पिंजरे की उड़ान

विप्लव लखनऊ

1
P

H
813.31
Y26P

पिंजरे की उड़ान

कहानी संग्रह

यशपाल

विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ

दो शब्द

हमारी कल्पना का आधार जीवन की ठोस वास्तविकताएं ही होती हैं इसीलिये कथा-कहानी के रूप में कल्पना का महत्व है। हमारी कल्पना या तो अतीत सुख-दुख की अनुभूति के चित्र बनाकर उस से सुख उठाना चाहती है या आदर्श की ओर संकेत कर समाज के लिये नया नक्शा तैयार करने का यत्न करती है।

जब छः वर्ष तक मैं पिंजरे में बन्द था, उस समय वास्तविक कार्यशीलता के लिये कोई अवसर न था। कहानी के रूप में कल्पना भूत और भविष्य की भूलभुलैयां में उड़ानें भरा करतीं।

इनमें से कुछ कहानियां मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ पारखियों ने उन्हें पुस्तक रूप में छपवा देने का अनुरोध किया, और छपवा दिया।

भाव, भाषा और कला की दृष्टि से प्रयास कैसा रहा यह इन कहानियों को पढ़ने वाले निश्चय करेंगे। मैंने केवल अपने प्रति ईमानदारी निबाही है।

यशपाल

विप्लव, लखनऊ
नवम्बर १९३९

अनुक्रमणिका

१.	मक्रील	६
२.	नीरस-रसिक	१६
३.	हिंसा	३०
४.	समाज-सेवा	३६
५.	प्रेम का सार	४६
६.	पहाड़ की स्मृति	५४
७.	पीर का मज़ार	५६
८.	दुखी-दुखी	६३
६.	भावुक	६८
१०.	मृत्युञ्जय	७५
११.	शर्त	८६
१२.	तीसरी चिता	६२
१३.	प्रायश्चित	६८
१४.	हृदय	१०७
१५.	पराई	११३
१६.	मजहब	१२०
१७.	कर्मफल	१२४
१८.	दर्पण	१२७
१६.	परलोक	१३२
२०.	दुख	१३६

पिंजरे की उड़ान

मक्रील

गरमी का मौसम था। 'मक्रील' की सुहावनी पहाड़ी। आबोहवा में छुट्टी के दिन बिताने के लिये आयी सम्पूर्ण भद्र-जनता खिंच कर मोटरों के अड्डे पर—जहां पंजाब से आने वाली सड़क की गाड़ियां ठहरती हैं—एकत्र हो रही थी। सूर्य पश्चिम और देवदारों से छायी पहाड़ी की चोटी के पीछे सरक गया था। सूर्य का अवशिष्ट प्रकाश चोटी पर उगे देवदारों से ढकी आग की दीवार के समान जान पड़ता था।

ऊपर आकाश में मोर-पूंछ के आकार में दूर-दूर तक सिन्दूर फैल रहा था। उस गहरे अर्गवनी रंग के पर्दे पर ऊंची, काली चोटियां निश्चल, शान्त और गम्भीर खड़ी थीं। संध्या के झीने अंधेरे में पहाड़ियों के पार्श्व के वनों से पक्षियों का कलरव तुमुल परिमाण में उठ रहा था। वायु में चीड़ की तीखी गन्ध भर रही थी। सभी ओर उत्साह, उमंग और चहल-पहल थी। भद्र महिलाओं और पुरुषों के समूह राष्ट्र के मुकुट को उज्ज्वल करने वाले कवि के सम्मान के लिये उतावले हो रहे थे।

योरुप और अमेरिका ने जिसकी प्रतिमा का लोहा मान लिया, जो देश के इतने अभिमान की सम्पत्ति है, वही कवि 'मक्रील' में कुछ दिन स्वास्थ्य सुधारने के लिये आ रहा है। मक्रील में जमी राष्ट्र-अभिमानी जनता, पलकों के पांवड़े डाल उसकी अगवानी के लिये आतुर हो रही थी।

पहाड़ियों की छाती पर खिंची धूसर लकीर-सी सड़क पर दूर धूल का एक बादल सा दिखायी दिया। जनता की उत्सुक नज़रें और उंगलियां उस ओर उठ गयीं। क्षण भर में धूल के बादल को फाड़ती हुई काले रंग की एक गतिमान वस्तु दिखायी दी। वह एक मोटर थी। आनन्द की हिलोर से जनता का समूह लहरा उठा। देखते ही देखते मोटर आ पहुंची।

जनता की उन्मत्तता के कारण मोटर को दस कदम पीछे ही रुक जाना

पड़ा—'देश के सिरताज की जय !' 'सरस्वती के वरद पुत्र की जय !' 'राष्ट्र के मुकुट-मणि की जय !' के नारों से पहाड़ियां गूंज उठीं।

मोटर फूलों से भर गयी। बड़ी चहल-पहल के बाद जनता से घिरा हुआ, गजरों के बोझ से गर्दन झुकाये, शनैः-शनैः कदम रखता हुआ मक्रील का अतिथि मोटर के अड्डे से चला।

उत्साह से बावली जनता विजयनाद करती हुई आगे-पीछे चल रही थी। जिन्होंने कवि का चेहरा देख पाया, वे भाग्यशाली विरले ही थे। 'धवलगिरि' होटल में दूसरी मंज़िल पर कवि को टिकाने की व्यवस्था की गयी थी। वहां उसे पहुंचा, बहुत देर तक उस के आराम में व्याघात कर, जनता अपने स्थान को लौट आयी।

क्वार की त्रयोदशी का चन्द्रमा पार्वत्य-प्रदेश के निर्मल आकाश में ऊंचा उठ अपनी शीतल आभा से आकाश और पृथ्वी को स्तम्भित किये था। उस दूध की बौछार में 'धवलगिरि' की हिमधवल दोमंज़िली इमारत चांदी की दीवार-सी चमक रही थी। होटल के आंगन की फुलवारी में खूब चांदनी थी परन्तु उत्तर-पूर्व के भाग में इमारत के बाजू की छाया पड़ने से अंधेरा था। बिजली के प्रकाश से चमकती खिड़कियों के शीशों और पर्दों के पीछे से आने वाली मर्मरध्वनि तथा नौकरों के चलने-फिरने की आवाज़ के अतिरिक्त सब शान्त था।

उस समय इस अंधेरे बाजू के नीचे के कमरे में रहने वाली एक युवती, फुलवारी के अन्धकारमय भाग में एक सरो के पेड़ के समीप खड़ी, दूसरी मंज़िल में पुष्प-तोरणों से सजी उन उज्ज्वल खिड़कियों की ओर दृष्टि लगाये थी, जिन में सम्मानित कवि को ठहराया गया था।

वह युवती भी उस आवेगमय स्वागत में सम्मिलित थी। पुलकित हो उसने भी 'कवि' पर फूल फेंके थे, जयनाद भी किया था। उस घमासान भीड़ में समीप पहुंच एक आंख कवि को देख लेने का अवसर उसे न मिला था। इसी साध को मन में लिये वह उस खिड़की की ओर टकटकी लगाये खड़ी थी। कांच पर कवि के शरीर की छाया उसे जब-तब दिखायी पड़ जाती।

स्फूर्तिप्रद भोजन के पश्चात कवि ने बरामदे में आ काले पहाड़ों के ऊपर चन्द्रमा के मोहक प्रकाश को देखा। सामने संकरी धुंधली घाटी में बिजली की लपक की तरह फैली हुई मक्रील की धारा की ओर नज़र गयी। नदी के प्रवाह की गम्भीर घरघराहट को सुन वह सिहर उठा। कितने ही क्षण मुंह उठाये वह मुग्ध-भाव से खड़ा रहा। मक्रील नदी के उद्दाम प्रवाह को उस उज्ज्वल चांदनी

में देखने की इच्छा से कवि की आत्मा व्याकुल हो उठी। आवेश और उन्मेष का वह पुतला सौन्दर्य के इस आह्वान की उपेक्षा न कर सका।

सरो वृक्ष के समीप खड़ी युवती पुलकित भाव से देश-कीर्ति के उस उज्ज्वल नक्षत्र को प्यासी आंखों से देख रही थी। चांद के धुंधले प्रकाश में इतनी दूर से उस ने जो भी देख पाया, उसी से संतोष की सांस ले उस ने श्रद्धा से सिर नवा दिया। इसे ही अपना सौभाग्य समझ वह चलने को थी कि लम्बा ओवर-कोट पहने, छड़ी हाथ में लिये, दायीं ओर के जीने से कवि नीचे आता दिखाई पड़ा। पल भर में कवि फुलवारी में आ पहुंचा।

फुलवारी में पहुंचने पर कवि को स्मरण हुआ, ख्यातनामा मक्रील नदी का मार्ग तो वह जानता ही नहीं। इस अज्ञान की अनुभूति से कवि ने दायें-बायें सहायता की आशा से देखा। समीप खड़ी एक युवती को देख, भद्रता से टोपी छूते हुये उस ने पूछा—"आप भी इसी होटल में ठहरी हैं?"

सम्मान से सिर झुका कर युवती ने उत्तर दिया—"जी हां।"

झिझकते हुये कवि ने पूछा—"मक्रील नदी समीप ही किस ओर है, यह शायद आप जानती होंगी?"

उत्साह से कदम बढ़ाते हुये युवती बोली—"जी हां। यहीं सौ कदम पर पुल है।" और मार्ग दिखाने के लिये वह प्रस्तुत हो गई।

युवती के खुले मुख पर चन्द्रमा का प्रकाश पड़ रहा था। पतली भवों के नीचे बड़ी-बड़ी आंखों में मक्रील की उज्ज्वलता झलक रही थी।

कवि ने संकोच से कहा—"न, न, आप को व्यर्थ कष्ट होगा।"

गौरव से युवती बोली—"कुछ भी नहीं—यही तो है, सामने!"

···उजली चांदनी रात में···संगमरमर की सुघड़, सुन्दर, सजीव मूर्ति-सी युवती···साहसमयी, विश्वासमयी मार्ग दिखाने चली · सुन्दरता के याचक कवि को। कवि की कविता वीणा के सूक्ष्म तार स्पन्दित हो उठे···सुन्दरता स्वयं अपना परिचय देने चली···सृष्टि सौन्दर्य के सरोवर की लहर उसे दूसरी लहर से मिलाने ले जा रही है—कवि ने सोचा।

सौ कदम पर मक्रील का पुल था। दो पहाड़ियों के तंग दर्रे में से उद्दाम वेग और घनघोर शब्द से बहते हुये जल के ऊपर तारों के रस्सों में झूलता हल्का-सा पुल लटक रहा था। वे दोनों पुल के ऊपर जा खड़े हुये। नीचे तीव्र वेग से लाखों-करोड़ों पिघले हुये चांद बहते चले जा रहे थे, पार्श्व की चट्टानों से टकरा कर वे फेनिल हो उठते। फेनराशि से दृष्टि न हटा कवि ने कहा—"सौन्दर्य

उन्मत्त हो उठा है।" युवती को जान पड़ा, मानो प्रकृति मुखरित हो उठी है।

कुछ क्षण पश्चात् कवि बोला—"आवेग में ही सौन्दर्य का चरम विकास है। आवेग निकल जाने पर केवल कीचड़ रह जाता है।"

युवती तन्मयता से उन शब्दों को पी रही थी। कवि ने कहा—"अपने जन्म-स्थान पर मक्रील न इतनी वेगवती होगी, न इतनी उद्दाम। शिशु की लटपट चाल से वह चलती होगी, समुद्र में पहुंच वह प्रौढ़ता की शिथिल गम्भीरता धारण कर लेगी।"

"अरी मक्रील! तेरा समय यही है। फूल न खिल जाने से पहले इतना सुन्दर होता है और न तब जब उस की पंखुड़ियां लटक जायं। उस का असली समय वही है, जब वह स्फुटोन्मुख हो। मधुमाखी उसी समय उस पर निछावर होने के लिये मतवाली हो उठती है।" एक दीर्घ निःश्वास छोड़, आंखें झुका, कवि चुप हो गया।

मिनिट पर मिनिट गुजरने लगे। सर्द पहाड़ी हवा के झोंके से कवि के वृद्ध शरीर को समय का ध्यान आया। उस ने देखा, मक्रील की फेनिल श्वेतता, युवती की सुघड़ता पर विराज रही है। एक क्षण के लिये कवि 'घोर शब्दमयी प्रवाहमयी' युवती को भूल मूक युवती का सौन्दर्य निहारने लगा। हवा के दूसरे झोंके से सिहर कर वह बोला—"समय अधिक हो गया है, चलना चाहिये।"

लौटते समय मार्ग में कवि ने कहा—"आज त्रयोदशी के दिन यह शोभा है। कल और भी अधिक प्रकाश होगा। यदि असुविधा न हो तो क्या कल भी मार्ग दिखाने आओगी?" और स्वयं ही संकोच के चाबुक की चोट खाकर वह हंस पड़ा।

युवती ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—"अवश्य।"

सर्द हवा से कवि का शरीर ठिठुर गया था। कमरे की सुखद ऊष्णता से उस की जान में जान आई। भारी कपड़े उतारने के लिये वह परिधान की मेज़ (ड्रेसिंग टेबल) के सामने गया। सिर से टोपी उतार उस ने ज्यों ही नौकर के हाथ में दी, बिजली की तेज रोशनी से सामने आईने में दिखाई पड़ा, मानो उस के सिर के बालों पर राज ने चूने से भरी कूची का एक पोत दे दिया हो और धूप में सुखाये फल के समान झुर्रियों से भरा चेहरा!

नौकर को हाथ के संकेत से चले जाने को कह वह दोनों हाथों से मुंह ढक कुर्सी पर गिर-सा पड़ा। मुंदी हुई पलकों में से उसे दिखाई दिया—चांदनी में संग-मरमर की उज्ज्वल मूर्ति का सुघड़ चेहरा जिस पर यौवन की पूर्णता छा रही थी, मक्रील का उन्माद भरा प्रवाह! कवि की आत्मा चीख उठी—यौवन! यौवन!

ग्लानि की राख के नीचे बुझती चिन्गारियों को उमंग के पंखे से सजग कर, चतुर्दशी की चांदनी में मक्रील का नृत्य देखने के लिये कवि तत्पर हुआ। 'घोपमयी' मक्रील को कवि के यौवन से कुछ मतलब न था, और 'मूक मक्रील' ने पूजा के धूप-दीप के धूम्रावरण में कवि के नखशिख को देखा ही न था इसलिये वह दिन के समय संसार की दृष्टि से बचकर अपने कमरे में ही पड़ा रहा। चांदनी खूब गहरी हो जाने पर मक्रील के पुल पर जाने के लिये वह शंकित हृदय से फुलवारी में आया। युवती प्रतीक्षा में खड़ी थी।

कवि ने धड़कते हुये हृदय से उसकी ओर देखा—आज शाल के बदले वह शुतरी रंग का ओवरकोट पहने थी परन्तु उस गौर, सुघड़ नख-शिख को पहचानने में भूल हो सकती थी!

कवि ने गद्‌गद् स्वर से कहा—"ओहो! आपने अपनी बात रख ली परन्तु इस सर्दी में, कुसमय! शायद उसके न रखने में ही अधिक बुद्धिमानी होती। व्यर्थ कष्ट क्यों कीजियेगा?···आप विश्राम कीजिये!"

युवती ने सिर झुका उत्तर दिया—"मेरा अहोभाग्य है, आप का सत्संग पा रही हूं।"

कंटकित स्वर से कवि बोला—"सो कुछ नहीं, सो कुछ नहीं।"

पुल के समीप पहुंच कवि ने कहा—"आपकी कृपा है, आप मेरा साथ दे रही हैं।···संसार में साथी बड़ी चीज़ है।" मक्रील की ओर संकेत कर, "यह देखिये, इसका कोई साथी नहीं इसीलिये हाहाकार करती साथी की खोज में दौड़ती चली जा रही है।"

स्वयं अपने कथन की तीव्रता के अनुभव से संकुचित हो, हंसने का असफल प्रयत्न कर, अप्रतिभ हो वह प्रवाह की ओर दृष्टि गड़ाये खड़ा रहा। आंखें बिना ऊपर उठाये ही उसने धीरे-धीरे कहा—"पृथ्वी की परिक्रमा कर आया हूं···कल्पना में सुख की सृष्टि कर जब मैं गाता हूं, संसार पुलकित हो उठता है। काल्पनिक वेदना के मेरे आर्तनाद को सुन संसार रोने लगता है परन्तु मेरे वैयक्तिक सुख-दुख से संसार को कोई सम्बन्ध नहीं। मैं अकेला हूं, मेरे सुख को बंटाने वाला कहीं कोई नहीं, इसलिये वह विकास न पा तीव्र दाह बन जाता है। मेरे दुःख का दुर्दम वेग असह्य हो जब उछल पड़ता है, तब भी संसार उसे विनोद का ही साधन समझ बैठता है। मैं पिंजरे में बन्द बुलबुल हूं। मेरा चहकना संसार सुनना चाहता है। मैं सुख से पुलकित हो गाता हूं, या दुःख से रोता हूं इसकी चिन्ता किसी को नहीं··।"

"काश ! जीवन में मेरे सुख-दुख का कोई एक अवलम्ब होता । मेरा कोई साथी होता ! मैं अपने सुख-दुख का एक भाग उसे दे, उसकी अनुभूति का भाग ग्रहण कर सकता ! मैं अपने इस निस्सार यश को दूर फेंक संसार का जीव बन जाता ।"

कवि चुप हो गया । मिनिट पर मिनिट बीतने लगे । ठंडी हवा से जब कवि का बूढ़ा शरीर सिहरने लगा, दीर्घ निःश्वास ले उसने कहा—"अच्छा, चलें ।"

द्रुतवेग से चली जाती जलराशि की ओर दृष्टि किये युवती कम्पित स्वर में बोली—"मुझे अपना साथी बना लीजिये ।"

मक्रील के गम्भीर गर्जन में विडम्बना की हंसी का स्वर मिलाते हुये कवि बोला—"तुम्हें ?" और चुप रह गया ।

शरीर कांप उठने के कारण पुल के रेलिंग का आश्रय ले युवती ने लज्जा-विजड़ित स्वर में कहा, "मैं यद्यपि तुच्छ हूं···"

"न-न-न यह बात नहीं" कवि सहसा रुक कर बोला, "उल्टी बात···हां, अब चलें ।"

फुलवारी में पहुंच कवि ने कहा—"कल···" परन्तु बात पूरी कहे बिना ही वह चला गया ।

अपने कमरे में पहुंच कर सामने आईने की ओर दृष्टि न करने का वह जितना ही यत्न करने लगा, उतना ही स्पष्ट अपने मुख का प्रतिबिम्ब उसके सम्मुख आ उपस्थित होता । बड़ी बेचैनी में कवि का दिन बीता । उसने सुबह ही एक तौलिया आइने पर डाल दिया और दिन भर कहीं बाहर न निकला ।

दिन भर सोच और जाने क्या निश्चय कर संध्या समय कवि पुनः तैयार हो फुलवारी में गया । शुतरी रंग के कोट में संगमरमर की वह सुघड़ मूर्ति सामने खड़ी थी । कवि के हृदय की तमाम उलझन क्षण भर में लोप हो गयी । कवि ने हंस कर कहा—"इस सर्दी में···? देश, काल, पात्र देख कर ही वचन का भी पालन किया जाता है ।" पूर्णिमा के प्रकाश में कवि ने देखा, उसकी बात के उत्तर में युवती के मुख पर संतोष और आत्म-विश्वास की मुस्कराहट फिर गयी । पुल पर पहुंच हंसते हुये कवि बोला, "तो साथ देने की बात सच-मुच ठीक थी ?"

युवती ने उत्तर दिया—"उसमें परिहास की तो कोई बात नहीं ।"

कवि ने युवती की ओर देख साहस कर पूछा—"तो जरूर साथ दोगी ?"

"हां।" युवती ने हामी भरी, बिना सिर उठाये ही।

"सब अवस्था में, सदा ?"

सिर झुका कर युवती ने दृढ़ता से उत्तर दिया—"हां।"

"कवि अविश्वास से हंस पड़ा।" तो आओ, उस ने कहा—"यहीं साथ दो मक्रील के गर्भ में ?"

"हां, यहीं सही।" युवती ने निर्भीक भाव से नेत्र उठा कर कहा।

हंसी रोक कर कवि ने कहा—"अच्छा, तो तैयार हो जाओ—एक दो-तीन !" हंस कर कवि अपना हाथ युवती के कन्धे पर रखना चाहता था। उस ने देखा, पुल के रेलिंग के ऊपर से युवती का शरीर नीचे मक्रील के उद्दाम प्रवाह की ओर चला गया।

भय से उस की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। हाथ फैला कर उसे पकड़ने के विफल प्रयत्न में बड़ी कठिनता से वह अपने आप को सम्हाल सका।

मक्रील के घोर गर्जन में एक दफे सुनाई दिया—'छप' और फिर केवल नदी का गम्भीर गर्जन।

कवि को ऐसा जान पड़ा—मानो मक्रील की लहरें निरन्तर उसे 'जाओ ! जाओ !' कह कर बुला रही हैं। वह अचेत ज्ञान-शून्य पुल का रेलिंग पकड़े खड़ा रहा। जब पीठ पीछे से चल कर चन्द्रमा का प्रकाश उस के मुंह पर पड़ने लगा, उन्मत्त की भांति लड़खड़ाता वह अपने कमरे की ओर चला गया।

कितनी देर तक वह निश्चल आईने के सामने खड़ा रहा। फिर हाथ की लकड़ी को दोनों हाथों से थाम उस ने पड़ापड़ आईने पर कितनी ही चोटें लगाईं और तब सांस चढ़ जाने के कारण वह हांफता हुआ आईने के सामने की ही कुर्सी पर धम से गिर पड़ा

प्रातःकाल हजामत के लिये गरम पानी लाने वाले नौकर ने देखा—कवि आईने के सामने कुर्सी पर निश्चल बैठा है परन्तु आईना टुकड़े-टुकड़े हो गया और उस के बीच का भाग गायब है। चौखट में फंसे आईने के लम्बे-लम्बे भाले के से टुकड़े मानो दांत निकाल कर कवि के निर्जीव शरीर को डरा रहे हैं।

कवि का मुख कागज़ की भांति पीला और शरीर काठ की भांति जड़ था। उस की आंखें अब भी खुली थीं, उन में से जीवन नहीं, मृत्यु झांक रही थी। बाद में मालूम हुआ, रात के पिछले पहर कवि के कमरे से अनेक बार—'आता हूं, आता हूं' की पुकार सुनाई दी थी।

नीरस रसिक

मीराकदल पुल के नीचे से नीलंगू दूधिया जेहलम तीसरे पहर के सूर्य की किरणों में झिल-मिल बही जा रही थी। जल का कल-कल, मर-मर शब्द और शिकारों* के छोटे-छोटे चप्पुओं की छपाछप पुल पर से जाने वालों के कानों तक पहुंच रही थी। नदी के दोनों किनारों पर छोटे-बड़े बजरे लगातार खड़े थे। बीच धार को चीर दायें से बायें और बायें से दायें किनारे जाने वाले, चटकीले रंगीले पर्दों से आवृत्त शिकारे नदी की धार पर ऐसे जान पड़ते थे मानो धूप में सूख रही नीली रेशमी साड़ी पर तितलियां कढ़ी हों,

बगल में कागजों का पुलिन्दा दबाये एक युवक पुल की लकड़ी की पटिया (फुटपाथ) पर खड़ा पोस्ट आफिस की ओर मुख किये इस दृश्य को देख रहा था। उसे सुनाई पड़ा—"मां जी, यह देखो प्रद्युम्न जी खड़े हैं।"

घूम कर युवक ने देखा, वृद्धा की बगल में खड़ी एक तरुणी अभिवादन के अभिप्राय से उस की ओर देख मुस्करा रही है।

"नमस्ते!" कह उस ने पूछा, "आप भी यहीं हैं?"

तरुणी ने कुछ समीप आ उत्तर दिया—"हम तो यहां एक सप्ताह से हैं। पिता जी आकर हमें छोड़ गये थे।...आप कब आये?"

प्रद्युम्न ने कहा—"मार्च के शुरू में ही वह कश्मीर आ गया था पर उधर आज आठ दिन बाद आया था।"

तरुणी ने मुस्करा कर पूछा—"क्या इस दृश्य का चित्र बनाने का विचार है?"

प्रद्युम्न ने फिर जेहलम की ओर देखते हुये उत्तर दिया—"यह मैं बना

---

*काश्मीर में सवारी के लिये उपयोग में आने वाली छोटी नाव को शिकारा कहते हैं।

चुका हूं। ठीक यही नहीं, जेहलम के 'प्रभातकालीन' दृश्य का एक तैल चित्र मैंने तैयार किया है। उस समय मैं यहीं ठहरा हुआ था। पन्द्रह दिन में वहां (संकेत कर) लाइब्रेरी के समीप था। आप लोग कहां ठहरे हैं ?"

"हम लोग चिनार नाले में हैं।" तरुणी ने उत्तर दिया, "आप अब कहां हैं ?"

प्रद्युम्न ने कहा—"अब मैं डल में हूं।"

तरुणी की माता बोली—"डल में ? वहां तो सब गोरे ही गोरे रहते हैं, क्यों सविता ?"

सविता ने हंस कर कहा—"यह भी तो साहिब हैं।"

सविता की हंसी का उत्तर हंसी से देते हुये प्रद्युम्न ने कहा—"नहीं, साहिब तो मैं नहीं। साहिब लोगों से कुछ हट कर बायीं ओर हूं। मार्तण्ड* का एक पेंटिंग तैयार कर रहा हूं। उसके बाद उस जगह को छोड़ दूंगा।"

सविता ने पूछा—"आप अपने चित्र हमें दिखाइयेगा ?"

"जब कहिये।"

मां की ओर देख सविता ने कहा—"लेकिन आपके हाउस बोट को कैसे ढूंढ़ेंगे ?"

दायें किनारे की ओर हाथ उठा प्रद्युम्न ने दिखाया—"मेरा शिकारा वह खड़ा है। चलिये, यहीं से डल गेट होकर चलिये। वहां से लौट आपको चिनार नाले पहुंचा दूंगा। क्यों माता जी, आप इधर कहां जा रही हैं ?"

सविता ने बताया मां के लिये दवाई लेने वे लोग कैमिस्ट के यहां आये थे। असली अभिप्राय घूमने जाने का ही था।

प्रद्युम्न का बजरा‡ छोटा सा था। पहिले छः फुट खुली जगह उसके बाद ड्राइंगरूम को ही प्रद्युम्न ने चित्रशाला बना लिया था। मां और सविता को बिठा, हांजी (मांझी) को चाय लाने के लिये कह वह बजरे की दीवार के सहारे उलट कर रखे कई एक चित्रों में से एक को उठा कर उन्हें दिखाने लगा।

यह 'जेहलम का प्रभातकालीन दृश्य' था। जो दृश्य वे लोग अभी देख कर आ रहे थे, उससे इसमें केवल इतना अन्तर था कि रुपहली चटकीली धूप की जगह प्रभात की पहली सुनहली सिंदूरी-सी किरणें, अधिक गहरे नीले जल

---

* पर्वत शिखर पर सूर्य का मन्दिर।

‡ मकान के ढंग की नाव।

पर छा रही थीं और ऊपर हल्के नीले आकाश में पक्षियों की पंक्तियां।

वृद्धा ने अपने श्रान्त नेत्र विस्मय से खोल चित्र को देखा, उसके उपयुक्त तारीफ के शब्द उसे न सूझ सके। सविता ने मां के बदले भी अंग्रेज़ी में बहुत कुछ कहा।

दूसरा चित्र था 'गौरव की वस्तु'! मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्र, झुर्रियों से भरा चेहरा, एक वृद्ध फूल से सुन्दर बालक को गोद में लिये। उसकी आंखें अभिमान से चमक रही थीं। यह तस्वीर मां को बहुत पसन्द आयी।

हांजी चाय ले आया। सविता ने हंस कर कहा—"वाह, मां जी को मुसलमान के हाथ की चाय पिलाइयेगा?"

प्रद्युम्न अपनी भूल पर लज्जित हो गया। उसने पूछा—"आजकल आप क्या कर रही हैं? कालिज तो आप छोड़ चुकी हैं!"

स्नेह का उलाहना देते हुये मां ने कहा—"कहां एक एम० ए० कर चुकी है अब फिर कोई दूसरा एम० ए० कर रही है।"

अपनी इस प्रशंसा की बात को उड़ा देने के लिये सविता ने कुछ विवशता दिखाते हुये पूछा—"इसमें क्या हर्ज़ है, आखिर करें क्या?"

मां द्रवित स्वर में बोली—"पहिले ही इतनी कमज़ोर है, इस पर और पढ़ाई का ज़ोर!"

सविता ने हंस दिया—"अच्छा! मैं प्रद्युम्न जी से तस्वीर बनाना सीखूंगी। उस से तो कमज़ोरी नहीं होगी? क्यों, आप सिखायेंगे!"

"क्यों नहीं, आप अवश्य सीखिये!" प्रद्युम्न ने उत्तर दिया।

जब सविता ने एन्ट्रेंस पास किया था, उसी वर्ष मां ने उसके विवाह की बात उठायी थी परन्तु पिता ने इस ओर कान न दिया। एफ० ए० पास कर लेने के बाद वह बात उसने और अधिक ज़ोर से उठायी परन्तु सविता के पिता को योग्य वर तलाश करने की कुछ जल्दी न हुई। पिता चाहते थे, लड़की को मानसिक विकास का पूर्ण अवसर मिले।

बी० ए० पास लड़की के लिये योग्य वर मिलना आसान काम नहीं और उसकी राय के बिना कुछ कर देना भी ठीक नहीं जंचा। इतने में सविता ने एम० ए० पास कर लिया। एम० ए० पास करने तक सविता ने इतना अधिक साहित्य पढ़ डाला कि साधारण पंजाबी हिन्दू लड़की के समान केवल विवाह ही उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य नहीं रह गया।

स्थूल जगत के अंतराल में जो एक सूक्ष्म जीवन है, जिस की लीला मस्तिष्क के अपरोक्ष निस्सीम क्षेत्र में रची जाती है, उस में उस का प्रवेश हो चुका था। विवाह कर वह अपने जीवन को निम्नकोटि के क्षेत्र में परिमित नहीं कर देना चाहती थी। वह जीवन के उस अदृश्य परन्तु अनुभूतिमय स्रोत काव्य को नहीं छोड़ देना चाहती थी, जिस में अतीन्द्रिय भाव से सभी कामनाओं की तुष्टि हो सकती है। उस इच्छा के देश को छोड़, पर कटा कर अपने आप को दूसरे के हाथ सौंप देने में क्या सुख था ?

विवाह तो एक दिन हो ही जायगा। कौमार्य एक दफे जाने के बाद लौट नहीं सकता—तो फिर कौमार्य के इस अधिकार को जितने दिन रखा जा सके, अच्छा है। इस मीठे वैराग्य को जितने दिन भोगा जा सके, अच्छा है।

प्रेम की आवश्यकता का अनुभव उसे न हुआ हो सो नहीं। जीवन वीणा का यह तार उस के हृदय में झंकार कर चुका था। इस राग को उस ने सुनने की चेष्टा की थी। निर्लिप्त भाव से गाने की भी उमंग मन में उठी थी परन्तु इस राग का आधार बहुत ही सूक्ष्म था, पृथ्वी से बहुत ऊंचा था। उसे भौतिकता का रूप दे, वह मिट्टी में नहीं मिला देना चाहती थी।

वायु की लहरों पर बहती हुई, बादलों की नौका पर चढ़ उस ने हृदय के आकाश में छाये अस्पर्श्य प्रेमी को पुकारा। कोई उत्तर न पा, उस ने आंसुओं का जल-प्लावन बहा दिया, आहो-जारी की आंधी चला दी, उसी में अन्तर्धान हो उस ने समझा, जीवन की सूक्ष्म वास्तविकता उस के हाथ आ गई।

उस की कविताओं की प्रशंसा भी खूब हुई थी। प्रणयार्थियों की कमी न होने से उसे उन की परवाह न थी, जरूरत नहीं मालूम पड़ती थी। उस ने विडम्बना से मुस्करा कर कहा—"मेरी कविता का लक्ष्य कला की आराधना, और आत्मतुष्टि है।"

कागज पर पेंसिल से अपनी कल्पना की सृष्टि रचने वाले समाज से विरक्त, उदासीन की तटस्थ गम्भीरता ने उस के मन में आदर का भाव उत्पन्न कर दिया। युवक की सौन्दर्य रचना की क्षमता देख सविता के मन में भी उस का अनुकरण करने की इच्छा उत्पन्न हुई। जीवन के लिये यह कितना व्यापक और आकर्षक क्षेत्र है। संसार से कुछ आशा न कर, 'स्वान्तः-सुखाय' सौन्दर्य की रचना यदि वह भी कर सके ! संसार उस की रचना को मुग्ध दृष्टि से देखे ! यह कितने संतोष का विषय होगा।

सविता नित्य तीसरे पहर कागज पेंसिल ले शिकारे पर सवार हो प्रद्युम्न के बजरे पर ड्राइंग सीखने जाती। एक छोटी-सी मेज़ पर कागज़ जमा, स्टूल पर बैठ वह बड़े यत्न से प्रद्युम्न के निर्देशानुसार रेखा अभ्यास करती और अपने बजरे पर लौट कर भी वह उस का अभ्यास करती। प्रद्युम्न के मुंह से 'Good' प्रशंसा का एक शब्द सुनने के लिये वह अपनी पूर्ण शक्ति व्यय कर देती।

प्रद्युम्न मार्तण्ड के मन्दिर का जो चित्र तैयार कर रहा था, वह अस्तोन्मुख सूर्य की किरणों में था इसलिये इस समय प्रद्युम्न खिड़की के सामने बैठ चित्र पर कूची चलाने में मग्न रहता। सविता श्रद्धा से उस की ओर देखती रहती। कुछ पूछने की जरूरत होने पर भी न बोलती। यहां तक कि संध्या हो जाने पर, बिना कुछ कहे ही वह घर लौट जाती।

उस दिन तीसरे पहर बादल हो जाने से मार्तण्ड का चित्र बनाने के लिये सूर्य का प्रकाश अनुकूल न था, प्रद्युम्न को फुर्सत थी। वह सविता की बगल से झुक उसे रेखाओं के विषय में समझा रहा था। उस के श्वास से सविता के माथे पर छिटके हुये केश-थिरक-थिरक जाते, उस के गरम श्वास का स्पर्श सविता की कनपटी और गर्दन पर अनुभव हो रहा था। इस स्पर्श से सविता के हाथ में एक शिथिलता सी आ जाती। पेंसिल उस की उंगलियों में बार-बार हिल जाती। पेंसिल के हिलने से रेखाओं में अन्तर आ जाता और इस के लिये प्रद्युम्न उसे निर्मल भाव से डांट देता। प्रद्युम्न की यह अभद्रता सविता की दृष्टि में सरलता और निष्कपटता थी, बल्कि उस में यथेष्ट माधुर्य था।

प्रद्युम्न ने खीझ कर कहा—"यह तुम्हारा हाथ हिल क्यों जाता है?" सविता की उंगलियों को जोर से थाम कर उस ने बताया, "यों रखिये!"

सविता परदे के जगत की कुमारी नहीं थी। उस ने अनेक अवसरों पर स्त्रियों और पुरुषों से हाथ मिलाया था और उस में किसी प्रकार की झिझक उसे अनुभव नही हुई परन्तु प्रद्युम्न के हाथ के छू जाने से उसे न जाने कैसा अनुभव हुआ? उस के हाथ से पेंसिल गिर पड़ी। प्रद्युम्न ने पूछा—"क्या थक गयी?"

प्रद्युम्न ने हांजी को पुकार कर चाय लाने के लिये कहा और समीप कुर्सी पर बैठ वह उत्साह से सविता को रेखाओं का महत्व समझाने लगा। उस ने कहा—"सौन्दर्य रंग में भी है और आकृति में भी। आकृति का सौन्दर्य रंग के सौन्दर्य से अधिक गम्भीर है।"

सामने शीशे के जार में रखी हुई तीन कमल की कलियों की ओर संकेत

कर उसने कहा—"देखिये, इन फूलों का रंग बहुत सुन्दर है लेकिन यदि इनकी प्रतिमूर्ति हम पत्थर में अंकित कर दें तो वह भी कम सुन्दर न होगी। सौन्दर्य का प्रधान कारण इनकी निर्दोष गोलाइयां और इनके नाल की लोच है। साहित्य में न जाने कितनी चीजों की उपमा कमल से दी जाती है जिनमें कमल का रंग नहीं होता। उन में केवल इनकी वर्तुल रेखाओं की कोमलता देखकर ही हम मुग्ध हो जाते हैं। जिस समय हम चित्र में मुख या अवयव की भंगिमा से कोई भाव व्यक्त करना चाहते हैं, उस समय रेखा में बाल भर अन्तर ला देने से ही सब कुछ बदल जाता है। रेखा ही सब कुछ है। कागज का टुकड़ा है, इस पर कुछ नहीं। यह पेंसिल लेकर यों दो वक्र रेखायें खींच दीजिये, आंख हो गयी। वह कागज़ देखने लगा। ज़रा परिवर्तन कर देने से वह आंख चकित, क्रोधित या मुग्ध हो सकती है और इसमें इस ढंग से ज़रा बढ़ा देने से ही यह मछली बन जायगी। इस रेखा को यों न खींच कर यों खींच देते तो वृक्ष बन जाता। यह भी कहा जा सकता है, इस कागज़ में सृष्टि के सभी रूप हैं और उपयुक्त रेखा से वह प्रकट हो जाते हैं। सृष्टि का रहस्य रेखा या आकृति में ही है। यदि भिन्न-भिन्न रेखायें न हों तो सब एक साथ, सब शून्य ही हो जाय।"

हांजी चाय रख गया। सविता प्याले में चाय डालने लगी। सविता के मुख की ओर बिना देखे प्रद्युम्न ने कहा—"तुम्हारी उंगलियां बहुत सुन्दर हैं। तुम्हारा चायदानी पकड़ने का ढंग बहुत कलापूर्ण है, खास तौर पर यह एक उंगली से ढक्कन को दबाना बहुत अच्छा मालूम देता है।"

सविता को रोमांच हो आया। उसका हाथ हिल गया। चाय मेज़पोश पर गिर गयी। सविता अपनी इस बेमौके की शिथिलता से झेंप गयी। प्रद्युम्न ने निरपेक्ष भाव से कहा—"कुछ परवाह नहीं, कोई हर्ज नहीं।"

उसके स्वर में सविता के शैथिल्य की अनुभूति का कुछ भी आभास न था।

प्रद्युम्न निरन्तर सविता की उंगलियों की ओर देखता रहा। जब चाय के दोनों प्याले बहुत शनैः-शनैः चाय डालने पर भी भर ही गये सविता ने चाय-दानी रख दी। प्रद्युम्न ने सविता के मुख की ओर आंख उठा कर कहा—"एक दिन मैं तुम्हारी उंगलियों का आलेख्य (Sketch) बनाऊंगा।"

दूसरे दिन सविता जब अपने यहां आलेख्य का अभ्यास करने बैठी, अपनी उंगलियों को देख कर उसका मन कल्पना लोक में जा माधुर्य की सृष्टि करने लगा। ध्यान बिखर जाने के कारण वह कुछ भी न कर सकी पर इस असफलता के कारण उसका मन दुखी न हुआ।

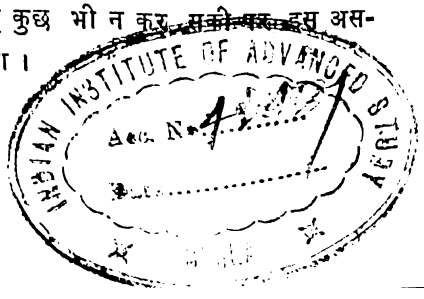

तीसरे पहर मौसम बहुत अच्छा था। आकाश ऐसा नीला, मानो डल झील का पानी ऊपर चढ़कर फैल गया हो। मार्तण्ड के मन्दिर के ऊपर बादल का एक झालरदार सुनहरी टुकड़ा लटक रहा था। सूर्य की तिर्छी किरणों में मन्दिर और कलश पर, छाया और प्रकाश का भेद खूब स्पष्ट हो रहा था।

प्रद्युम्न का सामान तैयार था। वह स्टूल पर बैठना ही चाहता था, इसी समय सविता आ पहुंची। सविता ने कहा—"आज तो आकाश आपके पेंटिंग के खूब अनुकूल है।"

प्रद्युम्न ने कमल के पत्ते पर एक कली रख कर कहा—"आज इसका आलेख्य कीजिये। पहिले खूब ध्यान से देख कर एक-एक रेखा को हृदयंगम कर लीजिये।"

सविता के मुख पर अपनी तीव्र दृष्टि गड़ा उसने समझाया—"कागज़ पर उतारने से पहिले आकृति को हृदयंगम करना जरूरी है।"

सविता को अनुभव हुआ, उसकी मुखाकृति को प्रद्युम्न की दृष्टि आत्मसात किये ले रही है। अपनी त्वचा पर उसे प्रद्युम्न की दृष्टि का स्पर्श अनुभव हो रहा था।

मार्तण्ड की छाया ठीक होते ही प्रद्युम्न खिड़की के सामने बैठ अपने पेंटिंग में रत हो गया। सविता यत्न करने पर भी अपना ध्यान कमल के पत्ते और कली पर न लगा सकी : उसके मस्तिष्क में रक्त के वेग के कारण ऊष्णता अनुभव हो रही थी। सामने देख वह सोचने लगी, यदि कोई चित्रकार सौन्दर्य के इस स्रष्टा का चित्र अंकन कर सके तो निश्चय ही वह कला का एक अद्भुत नमूना होगा। ध्यान को एकाग्र कर वह कागज़ पर रेखा खींचने का यत्न करती परन्तु न ध्यान जमता न हाथ ही। प्रायः एक घण्टा व्यतीत हो गया। इस बीच में केवल एक बार सिर फिरा कर प्रद्युम्न ने पूछा—"कुछ बना ?"

सविता ने कहा—"बना रही हूं।" परन्तु पेंसिल की अपेक्षा वह रबड़ ही अधिक चला रही थी।

सविता प्रद्युम्न को बिना टोके ही चली जा रही थी परन्तु उसने पुकार कर कहा—"चली जा रही हो ? लो आज यह समाप्त हो गया। अब दो-चार रोज़ तुम्हें अधिक सहायता दे सकूंगा। ठहरो न, तुम्हें छोड़ आऊंगा।"

वे दोनों शिकारे में साथ-साथ बैठे जा रहे थे। प्रद्युम्न के कहने से हांजी शिकारे को मजनू के पेड़ों के बीच से ले चला। दोनों ओर लहराते हुये मजनू के पेड़ों के बीच से उनका शिकारा जा रहा था। जल की सतह पर कमल इस

तरह छा रहे थे कि पानी कहीं दिखाई न पड़ता था। कमल के फूल दबते चले जाते थे और शिकारा उन पर से फिसलता चला जा रहा था।

प्रद्युम्न ने अर्ध-उन्मीलित नेत्रों से सामने की ओर देखते हुये कहा—"मध्य-कालीन यूरोप का एक चित्र है—'वीनस का सागरोद्भव' (Venus rising from the sea)। मेरे विचार में यदि इस पर्वत की छाया में कमल आच्छादित जल से मोहिनी का उद्भव चित्रित किया जाय तो बहुत माकूल चित्र बने।"

सविता ने पूछा—"आप अब इसी चित्र को क्यों आरम्भ नहीं करते?"

प्रद्युम्न कमलों के विस्तार पर से दृष्टि हटाये बिना ही बोला—"कल्पना के आधार पर ऐसा चित्र जब कभी भी बन सकता है। यहां आने का मेरा प्रयोजन कुछ प्रकृति और कुछ मनुष्य शरीर के चित्रों का बनाना है।"

सविता ने पूछा—"अब कौन-सा चित्र शुरू कीजियेगा?"

प्रद्युम्न ने उसी तरह ध्यान मग्न रह कर उत्तर दिया—"मैं एक निरावरण युवती का चित्र बनाना चाहता हूं।"

सविता का चेहरा लाल हो गया और नेत्र झुक गये।

अपनी भूल का ध्यान आने पर प्रद्युम्न ने सविता की ओर देख कर कहा—"मैं कला की दृष्टि से बात कर रहा हूं। जब हम सृष्टि की अन्य सुन्दर वस्तुओं से आशंकित नहीं होते तो मनुष्य शरीर में ऐसी कौन-सी बात है? नारी एक व्यक्ति के लिये मातृत्व की अनुभूति उत्पन्न करती है, दूसरे के लिये वह अन्य दृष्टि से काम्य वस्तु हो सकती है। कलाकार के लिये वह लावण्य-पुंज मात्र है। यही बात पुरुष के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

प्रद्युम्न के इस तटस्थ भाव से सविता का संकोच जाता रहा। बहुत देर तक वह इस बात को सोचती रही। समय-समय पर प्रदर्शनियों और पत्रिकाओं में देखी हुई अनेक निरावरण छबियां कल्पना में उस के सामने आकर नाचने लगीं। उस में अब उसे एक नया सामंजस्य, एक नयी कला दिखाई पड़ने लगी। स्नान करते समय या आइने के सम्मुख जाते समय उसे एक अद्भुत विचार घेर लेता। आशंका होती, शायद वह आवश्यकता से कृष है, उस के केश यदि कुछ और लम्बे होते, यदि उन का रंग कुछ और चमकीला काला होता, वे घुंघराले होते! किसी भी व्यक्ति को देखने पर उस की दृष्टि बहुत गहरी जाती। वह उसे कला की दृष्टि से देखने का यत्न करती है शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों के अनुपात का, उन के एकांगिक सौंदर्य का भी खयाल करती। जर्मनी के नग्न समाज के प्रति उसकी विशण्ण विरक्ति दूर हो गयी।

प्रद्युम्न उसे निर्जीव पदार्थों, पशु-पक्षियों के चित्र बनाने को कहता परन्तु वह अपने यहां लौट कर मनुष्य शरीर के चित्र बनाने की चेष्टा करती। भिन्न-भिन्न अंगों को स्वस्थ और उन के उचित अनुपात में देख कर उसे बहुत संतोष होता।

हांजी की सहायता से प्रद्युम्न का काम बन गया। एक काश्मीरी सुन्दर युवती प्रतिदिन तीन घण्टे उस के सामने बैठने के लिये आती थी। दस बजे से एक बजे तक का समय, जिस समय बजरे में काफी प्रकाश रहता, प्रद्युम्न पेंटिंग में खर्च करता। संध्या समय बिलकुल फुर्सत रहने से प्रद्युम्न सविता को खूब सहायता दे सकता था परन्तु अब अधिकतर आलोचना या बातचीत ही होती। सविता के लिये चित्रांकन के अभ्यास की अपेक्षा प्रद्युम्न के यहां जाना ही मुख्य प्रयोजन हो गया।

सविता को न जाने क्यों उस के परोक्ष में आकर चित्र उतरवाने के लिये सम्मुख बैठने वाली काश्मीरी युवती से ईर्षा होती थी। कई दफे उस की इच्छा हुई कि प्रद्युम्न से उस अधूरे चित्र को दिखाने के लिये कहे परन्तु नग्न चित्र देखने की इच्छा प्रकट करने के लिये उस की जिह्वा जड़ हो जाती। उस का मन चाहता था, वह प्रद्युम्न के बजरे को घेरे रहे; किसी भी दूसरी स्त्री को उस ओर ताकने न दे। वह दो बजे आ जाती और प्रायः सांझ तक वहीं बनी रहती।

मां ने लाड़ली बेटी को कभी किसी बात पर टोका न था परन्तु लड़की का यों विलम्ब से आना उसे सुहाता न था। मां ने कहा—"सविता जरा जल्दी आया करो तो कुछ घूमने-फिरने का भी समय रहे। यहां आकर यदि स्वास्थ्य ठीक न हुआ तो लाभ ही क्या ?"

सविता को कभी झूठ बोलने की आवश्यकता न पड़ती थी, न उसे उस का अभ्यास था। अब वह प्रायः मां के पूछने पर काश्मीर आई हुई किसी सहेली के साथ घूम आने की बात बना देती परन्तु समय सब प्रद्युम्न के ही यहां व्यतीत हो जाता।

उस रोज सविता जान-बूझ कर एक बजे से पहले ही आ पहुंची। उस समय वह सुन्दर काश्मीरी नवयुवती बजरे से लौट रही। उस का छरहरा शरीर, अस्खलित यौवन सद्य-प्रस्फुटित पुष्प के समान सुन्दर जान पड़ता था। उसे देख सविता ने वितृष्णा से मुख फेर लिया। मन में उस ने कहा—इस में न जाने क्या रखा है ?

प्रद्युम्न यह सब देख रहा था। उसने पूछा—"क्यों क्या बात है ?"

सविता ने उद्विग्न स्वर में कहा—"यही है न, जिसका तुम चित्र बना रहे हो ?"

प्रद्युम्न ने उत्तर दिया—"हां ! क्यों उसमें क्या बुराई है ?"

सविता ने क्रोध को दबाते हुये कहा—"तो इसमें अच्छाई ही क्या है ?"

प्रद्युम्न—"क्यों, प्रकृति से सौन्दर्य का वरदान पाना क्या लज्जा का विषय है ?"

खीझकर सविता ने कहा—"तो क्या इसका सौदा करे इन्सान ?"

प्रद्युम्न ने आश्चर्य से पूछा—"सौदा ?···परन्तु सौन्दर्य जैसी सम्पदा को छिपाने का क्या कारण ? और फिर सौदा कैसा ? क्या कोई सौन्दर्य का मूल्य दे सकता है ? मैंने इसे पचास रुपये दिये हैं परन्तु योरुप में वह इसी सिटिंग के लिये मामूली तौर पर चार-पांच सौ रुपया पा सकती थी। यदि उसकी एक अच्छी छवि बन सके, यदि इस नश्वर शरीर के सौन्दर्य की शाश्वत स्मृति रह सके तो वह कितनी आत्माओं का सन्तोष कर सकेगी ? अच्छा आओ, इस पेंटिंग को देखो, कैसा बना है ?"

सविता के मन की इच्छा पूर्ण हुई परन्तु आज इस ओर ताकने को उसका मन न चाहता था। चित्र को देख कर वह अपलक रह गयी। एक अपूर्व सुन्दरी युवती, आदमकद आइने के सामने खड़ी स्वयं अपनी छवि देख कर चकित हो रही है। उसे मालूम हुआ—मानो उस काश्मीरी युवती के सम्मुख वह पददलित हो गयी। आंसू इकट्ठे होकर उसके गले में भर आये। ओंठ दबा उन्हें पी, विक्षिप्त भाव से वह एक कुर्सी पर बैठ गयी।

प्रद्युम्न ने पूछा—"आज ड्राइंग नहीं करोगी ?"

सविता से कुछ कहते न बना। यदि मुंह खोलती तो उसमें से क्रन्दन का चीत्कार निकल पड़ता। उसने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया।

प्रद्युम्न ने खीझे हुये स्वर में कहा—"उस युवती पर तुम्हारा क्रोध अकारण है।"

सविता ने गहरा सांस लेकर कहा—"सौन्दर्य की आराधना में पैसे का क्या सवाल ?"

प्रद्युम्न ने दूसरी कुर्सी पर बैठते हुये उत्तर दिया—"उस स्त्री के लिये वह सौन्दर्य की आराधना नहीं थी।"

सविता ने विजय के स्वर में कहा—"यही तो बात है, उसने अपने सौन्दर्य का सौदा किया है।"

प्रद्युम्न ने एक सिगरेट जला कर बहुत सा धुआं छोड़ते हुये शान्त स्वर में कहा—"यदि संगीतज्ञ अपने गले के माधुर्य से कुछ कमा ले, या चित्रकार अपनी उंगलियों की कला से कुछ अर्जन करे या पहलवान अपनी शारीरिक शक्ति से इनाम पाने की चेष्टा करे तो उसमें कुछ भी बुरा नहीं, निन्दा का कोई कारण नहीं लेकिन रूपवती यदि अपने रूप के प्रभाव से कुछ पा जाये तो वह महापाप है, ···क्यों ?"

इस अज्ञात युवती के प्रति प्रद्युम्न की सहानुभूति सविता को फूटी आंखों न सुहा रही थी। उसने बात समाप्त करने के लिये कहा—"यों तर्क करने से बात बहुत दूर तक पहुंच सकती है। सभी जगह एक ही नुस्खा नहीं चल सकता। औचित्य की एक सीमा है।"

प्रद्युम्न अपने संग्रहीत चित्रों का एक एलबम उठा लाया। उसमें से 'रोरिक निकोलस' के अनेक चित्र सविता को दिखा कर उसने कहा—"मुझे रोरिक के रूपक की ओर संकेत करने वाले चित्र बहुत पसन्द हैं। इनमें से विशेषकर 'पथदर्शक' और 'शान्ति पताका'। इसी प्रकार के दो-चार चित्र मैं भारतीय संगीत के रूपक लेकर बनाना चाहता हूं; पर अभी इस विषय में अपनी कल्पना से मैं सन्तुष्ट नहीं हो सका।

सविता ने कहा—"देर हो रही है, चलूं, मां नाराज़ होगी।"

एलबम बन्द करते हुये प्रद्युम्न बोला—"कुछ देर ठहरो, चाय पीकर जाना। तुम बहुत थकी हुई हो।"

सविता ने पूछा—"अभी तो आप 'उसके' दो-एक पेंटिंग और बनायेंगे !"

प्रद्युम्न ने सिर हिला कर इन्कार किया—"न, मुझे एक और निरावरण चित्र बनाना है परन्तु उसके लिये भावपूर्ण और सचेत मस्तिष्क के चेहरे की जरूरत है, जिसे कह सकते हैं—सजग मस्तिष्क का सौन्दर्य, वह उस औरत में नहीं है।"

प्रद्युम्न उठ कर बाहर हांजी को चाय बनाने का हुक्म देने गया। उस समय सविता ने एक गहरा सांस लिया। उसकी आंखों में रुके हुये आंसू ढुलक पड़े। अपनी निर्बलता प्रकट होने के भय से उठकर, समीप मेज़ पर रखे हुये जग से कमल के फूल निकाल उसने खिड़की में से बाहर मुंह धो डाला। वह खूंटी पर से तौलिया ले मुंह पोंछ ही रही थी कि उसी समय प्रद्युम्न लौट आया। उसने पूछा—"क्यों, मुंह क्यों धो डाला ? क्या गरमी मालूम हो रही है, खिड़की खोल दूं ?"

सविता ने भर्राई हुई आवाज़ में उत्तर दिया—"नहीं तो ।"

प्रद्युम्न ने ध्यान से सविता की ओर देख कर कहा—"क्यों, क्या कुछ जुकाम है । आवाज़ भारी क्यों है ?"

सविता कुछ उत्तर न दे, जग के शेष जल में कमल के फूलों को पैठाने लगी ।

प्रद्युम्न ने कहा—"तुम्हारी यह उंगलियां इन कलियों पर बहुत भली मालूम होती हैं, इस का एक स्केच कैसा अच्छा बने ?"

कुरसी पर बैठते हुये सविता ने उत्तर दिया—"मुझे क्या मालूम ?"

चाय समाप्त होने पर प्रद्युम्न ने घड़ी की ओर देख कर कहा—"तुम्हें देर तो नहीं हो रही, मां नाराज न हों ?"

सविता ने उत्तर दिया—"अभी जाती हूं ।"

पन्द्रह मिनट और बीत गये । प्रद्युम्न ने कहा—"अंधेरा हो जायगा, चलो तुम्हें छोड़ आऊं ।"

सविता ने कुरसी पर बैठे ही बैठे धीमे स्वर में कहा—"चलती हूं ।"

एक बात उस के हृदय से निकल कर उस की जिह्वा पर आना चाहती थी परन्तु जिह्वा उस की तीव्रता को सहार न सकती थी ।

अंधेरा हो जाने पर ही वे लोग चिनार नाले पहुंच पाये ।

अक्टूबर का महीना आ पहुंचा । सविता के लिये अब अधिक दिन श्रीनगर में ठहरना कठिन था । मां तो अगस्त से ही घबरा रही थी । प्रद्युम्न डल झील छोड़ अपना बजरा जेहलम में ले आया था । दोनों के बजरों में दो फर्लांग से अधिक अन्तर नहीं था । सविता और मां के श्रीनगर से चलने में केवल दो ही दिन रह गये थे परन्तु प्रद्युम्न के जाने का अभी कोई सवाल न था । उस ने अपने चित्र पेरिस की प्रदर्शनी के लिये भेज दिये थे । अब वह हेमन्त ऋतु में हिम की श्वेत चादर ओढ़े काश्मीर के कुछ चित्र बनाना चाहता था ।

श्रीनगर आते समय सविता बेफिक्री, आत्मतुष्टि, तटस्थता और अभिमान लिये रानी बन कर आई थी । आज उस से कोसों दूर, वह अपने ही सम्मुख बन्दी सी, पराजित सी, दलित सी हो रही थी परन्तु हजार दुखों का दुख यह था कि विजेता अपनी विजय की ओर आंख उठा कर भी देखना न चाहता था । मानो 'वह' विजय करने लायक कोई चीज ही न थी । संसार में इस उपेक्षा से अधिक असह्य और क्या होगा ? जो हो, अब उसे निर्णय करना ही था··· या तो अब, या फिर कभी नहीं ?

उस दिन उस ने सीधे ही प्रद्युम्न से पूछ लिया—"आखिर सौंदर्य का प्रयोजन सृष्टि में है क्या जो तुम उसे इतना महत्व देते हो ?"

प्रद्युम्न ने ध्यान से शून्य की ओर देख कर कहा—"सौंदर्य का प्रयोजन ·· मैं तो कहूंगा, सौंदर्य सृष्टि का गुण है। सृष्टि की गति को, सृजनशक्ति को चालू रखना इस गुण का प्रयोजन है। सृष्टि का सौंदर्य ही उस के जीवन की स्फूर्ति है। अपनी सौंदर्य शक्ति के द्वारा ही सृष्टि अपनी गति को जारी रख पाती है। सृष्टि के चर-अचर में सौंदर्य अपने आप को चरितार्थ करता है। यही सृष्टि के जीवन की गति का रहस्य है।

सविता ने बात को समाप्त न होने देने के लिये पूछा—"तो क्या सृष्टि के सभी प्राणी सुन्दर हैं ? आकर्षक हैं ?"

प्रद्युम्न ने उत्तर दिया—जरूर ! कविता या कला के प्रदर्शन के लिये हम चाहे एक आध व्यक्ति या जीवन को रूपक चुन लें परन्तु सौंदर्य स्त्री मात्र में और पुरुष मात्र में व्यापक है, जैसे आकाश और ऊष्णता सभी पदार्थों में व्याप्त हैं।"

सविता ने एक और चोट की, उस ने पूछा—"आप को तो आकर्षण शायद उस काश्मीरन के अतिरिक्त और कहीं दिखाई नहीं दिया ?"

प्रद्युम्न जरा हंस दिया—"सो बात नहीं, पर तुम्हारा क्रोध उस पर से हटा नहीं ! वह सुन्दर जरूर है, और बहुत सुन्दर है परन्तु उस का सौंदर्य ऐन्द्रिय-आकर्षण को चेतन करने के ही योग्य है। मैंने उस से अधिक आकर्षक सौंदर्य क्यों नहीं देखा ! जागरित मस्तिष्क को केवल आकृति और रंग का ही लावण्य आकर्षित नहीं करता। वह रूप के लावण्य के साथ चेतन मस्तिष्क की आभा भी चेहरे पर देखना चाहता है। तुम्हारे ही मुख पर जो करुण और सौम्य की आभा है वह किसी संस्कृत मस्तिष्क को छुये बिना नहीं रह सकती।" सविता से रहा न गया, वह रो पड़ी।

प्रद्युम्न ने समझा, सविता अपने प्रति व्यक्तिगत संकेत से नाराज़ हो गई।

दुखित हो उस ने कहा—"तुम किसी बात पर तटस्थ समीक्षक की दृष्टि से विचार क्यों नहीं कर पातीं ? इस में व्यक्तिगत बात तो कुछ भी न थी !" इस सवाल का असर सविता पर उल्टा ही हुआ। उस के रोने का वेग बांध तोड़ कर बह निकला।

बहुत देर तक ध्यान में मग्न रह प्रद्युम्न बोला—"मुझे अफसोस है अपनी गलती पर। अब मैं किसी ऐसे प्रसंग पर बात न करूंगा लेकिन यह तरीका कलाकार या कवियों का नहीं।"

सविता निराशा की चोट से बिलख कर उठ खड़ी हुई। उसने कहा—"मैं जाती हूं।"

प्रद्युम्न चलकर उसे छोड़ आने को प्रस्तुत हुआ। सविता ने कहा—"रहने दीजिये, क्यों कष्ट कीजियेगा!"

कुछ न समझ, व्यथित हो प्रद्युम्न ने कहा—"बहुत अच्छा, आपकी इच्छा न हो तो रहने दीजिये।"

सविता दांतों से ओंठ दबा बजरे से उतर गयी। उसका मन चाहता था अपना सिर पीट ले, सिर के बाल नोच ले, जेहलम की सतह में समा जाय।

वह सोच रही थी—यह व्यक्ति है जो दावा करता है कलाकार होने का··· सौंदर्य और आकर्षण की मीमांसा करने का!

हिंसा

खिजियार की बड़ी तारीफ सुनी थी। दो सप्ताह वहां एकान्त में रह कर अपनी पुस्तक की पाण्डुलिपि को दोहरा देना चाहता था। डलहौज़ी में चम्बा रियासत का प्रतिनिधि रहता है। उस से खिजियार के डाकबंगले में रहने की इजाज़त चाही। मुझे समझाया गया, एक नया बंगला आते-जाते अफसरों के ठहरने के लिये सुरक्षित है। दूसरे बंगले में एक स्काच फौजी अफसर ठहरा हुआ है। शेष तीसरे बंगले में मैं केवल दो सप्ताह ठहर सकता हूं।

वहां पहिले से ही एक अंग्रेज़, और वह भी फौजी अफसर के मौजूद होने की खबर से एकान्त सुख भोगने की मेरी सम्पूर्ण आशा किरकिरी हो गयी। सोचा, यह गोरा अकड़-अकड़ कर मेरे सामने घूमेगा और सब कोई उसको सलाम करेगा, मेरी क्या इज्ज़त रह जायेगी!

डलहौज़ी से खिजियार जाने वाली उतार-चढ़ाव की चक्करदार सड़क पर छड़ी घुमाता, पत्थरों को ठोकर मारता चला जा रहा था। मन में वही उलझन लग रही थी। इच्छा होती थी, मेरे खिजियार पहुंचने के समय यह गोरा या तो सो रहा हो या भीतर अपनी शाम की चाय पी रहा हो ताकि एक दफे मैं इज्ज़त से जाकर टिक भर सकूं; शेष देखा जायेगा।

लेकिन हुआ क्या?···ज्यों ही पहाड़ी का अन्तिम मोड़ घूमा, खिजियार का खुला मैदान मेरी आंखों के सामने बिछ गया। सामने बंगले के बरामदे में रात की धारीदार पोशाक पहरे एक गोरा, शरीर को फैला कर अंगड़ाई लेता दिखायी पड़ा।

अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों में स्काच लोगों की अनेक विडम्बना पढ़ कर भी उनके प्रति कोई विपरीत धारणा मेरे मन में नहीं बैठी थी। वह सब तटस्थता एक क्षण में न जाने कहां चली गयी, मन वितृष्णा से भर गया। उधर से नज़र हटा, मानों मैंने कुछ देखा ही नहीं, बायीं ओर के ऊंचे देवदारों

पर अदृश्य पक्षियों को देखता हुआ मैं बंगले की ओर बढ़ा। बरामदे में पैर नहीं रख पाया था कि वह घिनौना अंग्रेज चिल्ला उठा—"हैलो, गुड् डे जैन्टलमैन !

जबरदस्ती चेहरे पर मुस्कराहट ला जवाब दिया—"गुड् डे थैंक्यू !"

इतने से उस भले आदमी को सन्तोष नहीं हुआ, बोला—"सड़क बहुत खराब है, कहिये तकलीफ तो नहीं हुई ? लेकिन जगह देखिये कैसी सुन्दर है ! यहां पहुंच सब कीमत वसूल हो जाती है। कम से कम मैं तो ऐसा ही समझता हूं। इतना कह उत्तर पाने की आशा में वह हंस दिया।

दिल में सोचा, पूरा स्काच है, दमड़ी को दांत से पकड़ने वाला···सैर करने आया है लेकिन यहां भी 'पूरी कीमत' वसूल करने की बात नहीं भूला।

संक्षेप में उत्तर दिया—"बेशक जगह ऐसी ही है। जैसा सुन कर आया था, वैसा ही पाया। मैं सदा एकान्त पसन्द करता हूं।"

मेरे एकान्त प्रेम के प्रति अनावश्यक कौतूहल प्रकट कर, परिचय बढ़ाने के लिये स्काच ने दो-चार बातें और कहीं। बाहिर घास पर खड़ा-खड़ा मैं उस से बातचीत कर रहा था। अनजाने में उस के प्रति मेरी घृणा जाती रही।

स्काच ने बताया—वह भी एकान्त की खोज में दो मास का अवकाश पलटन से लेकर आया था। उसे सात सप्ताह अकेले बीत चुके थे, एकान्त की साध पूरी कर ऊब गया था। मेरा वहां पहुंच जाना उस का सौभाग्य था। उस ने यह भी आशा प्रकट की कि उस की उपस्थिति से मेरे एकान्त में विशेष विघ्न न पड़ेगा।

अपनी बात काट कर, अपनी कलाई की ओर देख कर उस ने कहा—"ग्यारह मील पैदल चल कर आप आये हैं, चाय का समय भी हो रहा है। आप के आदमी को तो देर लगेगी—दस मिनिट में मेरी मामूली चाय तैयार हो जायगी। मैं अकेले चाय पीते-पीते उकता गया हूं···।"

भीतर गुसलखाने में हाथ-मुंह धोते-धोते मेरा विचार स्काच के प्रति बिलकुल बदल गया, आदमी भला जान पड़ता है।

चाय पीते-पीते उस ने खिजियार के आस-पास का पूरा जुगराफिया मुझे समझा दिया। तीन वर्ष वह भारत की पूर्वीय सीमा—'युवान' में रह आया था, वहां का भी हाल उस ने सुनाया। फिर दार्जिलिंग का कुछ ज़िक्र किया। मालूम होता था, उस की ज़बान बेकार पड़ी-पड़ी बोलने को बेचैन हो रही थी, वह थमना ही न चाहती थी।

चाय की तिपाई के नीचे से घुरघुराने का शब्द सुन मैंने झांक कर देखा—एक कबरी बिल्ली आकर बैठ गई है और अधिकार भरी दृष्टि से स्काच की

ओर देख रही है। स्काच ने हंस कर कहा—हल्लो पूसी! और एक तश्तरी में थोड़ा दूध डाल बिल्ली के सामने रख दिया। बिल्ली उसे जिह्वा से सपड़ने लगी। मैं उस की ओर देख रहा था। बिल्ली अचानक चौंकी और पल भर में वह बंगले के बरामदे में थी और उस के पंजों में थी एक चुहिया।

स्काच ने कहा—"मार लिया। उस के स्वर में आर्द्रता का आभास था। मैंने उस के मुख की ओर देखा। उस के चेहरे पर भी एक दुविधा का-सा भाव दिखाई दिया। बिल्ली चूहे को मौत का खेल खिला रही थी। मैं कभी बिल्ली की ओर देखता और कभी स्काच के चेहरे की ओर। उस की अधमुंदी आंखों और माथे की त्योरियों से जान पड़ता था वह गूढ़ विचार में मग्न है। बिल्ली बहुत देर तक अपना लोभ संवरण न कर सकी और गम्भीरतापूर्वक उस चुहिया को उदरस्थ करने लगी। स्काच ने करवट बदल अपना मुख उधर से हटा लिया।

इस बीच में हम दोनों परस्पर नाम-धाम से परिचित हो चुके थे। उस का नाम था मैकफील्ड। वह डैवनशायर या यार्कशायर पल्टन में कैप्टेन था। कुछ देर विचार तन्द्रा में रह कर मैकफील्ड ने कहा—

"आप लोगों की पूर्वीय विचारधारा में अहिंसा को बहुत महत्व दिया गया है। खैर···मैं अनुचित रूप से आप का समय नष्ट नहीं करना चाहता। आप के विश्राम में तो व्याघात नहीं हो रहा?"

निश्चय दिलाने पर कि ऐसी आशंका की गुंजाइश नहीं, मैकफील्ड ने कहना शुरू किया—"मैं कहूंगा यह हिंसा-अहिंसा की समस्या बहुत गूढ़ है। मैं समझता हूं, संसार का सम्भव और विनाश इसी के अन्तर्निहित है। सभी दार्शनिक हिंसा को इस के व्यापक अर्थों में अति गर्हित बताते हैं परन्तु प्रकृति हिंसा के बिना एक क्षण भी तो नहीं चल सकती। अभी यह देखिये, क्या इस बिल्ली को आप दोषी कह सकेंगे···?

"मैं आप का समय अधिक देर तक नष्ट नहीं करना चाहता परन्तु देखिये, इस महायुद्ध में मैं बाल्कान अन्तरीप में था—वहां हमारी स्थिति अच्छी नहीं थी। वहां कुछ दिन खूब नरसंहार हुआ—और देखिये, हम लोग नर रक्त को पवित्र बताते हैं। वहां नरसंहार करना ही हमारा कर्तव्य था। जिस ने जितना अधिक नरसंहार किया, उस की उतनी ही अधिक प्रशंसा हुई। मुझे भी एक क्रास मिला। हमारे प्रतिद्वंदी आस्ट्रियन लोग भी ऐसा ही कर रहे थे। हम जिन्हें मारते थे उन से हमारा व्यक्तिगत कुछ द्वेष न था, परिचय न था परन्तु उन्हें मार कर एक सन्तोष होता था। मैंने हजारों को मरते मारते देखा परन्तु

मैं कभी विचलित नहीं हुआ। वजह यह कि मुझे निश्चय था कि हम जो कर रहे हैं सत्य और न्याय की रक्षा के लिये कर रहे हैं परन्तु अड़ाई मास पूर्व जो घटना बन्नू में मेरी आंखों के सामने घटी उसे आपको सुनाना चाहता हूं, उसने मुझे विचलित कर दिया। हां आप विश्राम करने के लिये तो नहीं जाना चाहते ?

"मेरे नकारात्मक उत्तर देने पर उसने फिर कहना शुरू किया—अभी इस जनवरी की दो तारीख को हमारे ब्रिगेडियर कर्नल वेर्टिग सुबह के समय पल्टन की परेड देखने वाले थे। उस रोज़ धुन्ध इतना गहरा था कि कुछ न पूछिये। मार्च करती हुई कम्पनियों के कदम चाप का शब्द तो सड़क पर सुनायी देता था परन्तु दिखायी कुछ फीट की चीज़ भी नहीं देती थी इसलिये ब्रिगेडियर साहब की प्रतीक्षा में मैं सड़क पर ही खड़ा था।

"ब्रिगेडियर साहब की कार आयी। सैल्यूट कर मैं उनके साथ-साथ आठ-दस कदम ही पल्टन की ओर बढ़ा होऊंगा—एक आदमी ताजी कुत्ते की तरह ब्रिगेडियर साहिब पर लपक पड़ा। मैं और मेरे अर्दली कुछ बीच-बचाव करें कि उस आदमी ने ब्रिगेडियर साहिब की गर्दन पर हाथ की छुरी के तीन वार कर दिये।

"अपना रिवाल्वर निकाल मैंने उस आदमी पर तीन फायर किये। वह या अली ! कह कर गिर पड़ा। गर्दन पर दो हाथ पूरे बैठे थे—ब्रिगेडियर गिर पड़े थे। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो गया। रक्त प्रबल वेग से जा रहा था परन्तु घाव ऐसी जगह थे कि कपड़ा कस कर रक्त को रोका भी नहीं जा सकता था। दो सार्जेण्ट और कुछ अर्दली लोग फायरों की आवाज़ सुन घटनास्थल पर आ पहुंचे। ब्रिगेडियर साहिब की नाड़ी देखने पर हमें उसमें कुछ भी स्पन्दन अनुभव न हुआ, फिर भी उन्हें तुरन्त हस्पताल पहुंचाने के लिये मैंने उन्हें कार में लिटाने का आर्डर दिया।

"इस समय मुझे आक्रमणकारी का खयाल आया। एक अर्दली उस समय भी उसकी ओर रिवाल्वर ताने खड़ा था। समीप जा कर देखा उसके शरीर से भी रक्त बह रहा था। गोलियां उसकी पीठ और कन्धों में धंस गयी थीं। वह अल्लाह पुकार रहा था। उसे भी हस्पताल ले जाना आवश्यक था। कोई दूसरा उपाय न होने से उसके शरीर की मैली चादर में ही उसे लिपटवा कर कार के पीछे कैरियर पर बंधवा दिया। उस पठान के चेहरे पर भय का कोई चिन्ह न था। बड़ी शान्ति से, एक शहीद की भांति, वह अपनी पीड़ा को चुपचाप सह रहा था।

"हस्पताल पहुंचने से पहिले ही ब्रिगेडियर साहिब के प्राण निकल चुके थे। फोन पर खबर पा सिविल सर्जन और मजिस्ट्रेट भी आ पहुंचे। उन्होंने पठान के ज़ख्मों की रिपोर्ट लिखवायी और बयान लिया। पठान ने सलाम कर कहा—"हुजूर, हमको गोली करवा दो, बहुत दुआ देगा।"

"मेरा भी बयान लिखा गया। मैंने कहा—धुन्ध की वजह से साफ तो कुछ दिखायी देता न था लेकिन ब्रिगेडियर साहिब को जब मैंने सैल्यूट की उसी समय वह पठान मुझे सड़क से आता दिखायी दिया। उस सड़क पर किसी के आने-जाने से शक या एतराज़ की कोई वजह न थी। बाद में जो हुआ सो मैं आपको बता ही चुका हूं।

"मजिस्ट्रेट ने हिदायत की कि पठान की देखभाल अच्छी तरह से की जाय। भरसक उसे मरने न दिया जाय। सम्भव है, किसी भयंकर षड़यन्त्र का इन्कशाफ हो।

"हम लोगों का खयाल था, हो-न-हो यह पठान किसी वक्त ब्रिगेडियर साहिब के यहां नौकर रहा होगा और साहिब की किसी बात से अपना अपमान समझ, मौका पा उसने बदला ले लिया लेकिन उसके मुंह से कुछ और सुना।

"अगले दिन जब मजिस्ट्रेट उसे फिर देखने आये वह शान्त और व्यवस्थित था। उसके शरीर से गोलियां निकाली जा चुकी थीं। वह अपनी प्रार्थना में रत था। पूछने पर उसने अपना नाम-धाम बता दिया। वह वजीरिस्तान के किसी गांव का रहने वाला था। उसका सगा सम्बन्धी या रिश्तेदार कोई शेष न था। गांव वालों से झगड़ कर वह बन्नू आ बसा। उसने कई जगह नौकरी की और ब्याह भी किया। किस्मत की बात—नौकरी छूट गयी और औरत कोई भगा ले गया। कभी यहां, कभी वहां सड़क कूटने की मज़दूरी कर वह पेट भरता रहा। अब कमज़ोर हो जाने से यह काम इससे होता न था। चोरी उसने नहीं की यही जान कर मुझे विस्मय हुआ। इस तबके के पठान प्रायः चोरी में बहुत दक्ष होते हैं। वह धार्मिक वृत्ति का व्यक्ति जान पड़ता था।

"जीवन में सुख की कोई आशा न थी। यदि कोई आशा थी तो केवल मर कर बहिश्त पहुंचने की लेकिन बहिश्त में सुख पाने के लिये भी तो उपाय चाहिये। दान-पुण्य के लायक उसके पास क्या रखा था, जिसे खुद खाना तक नसीब न हो। बदन के चीथड़े और एक छुरी, यही उसकी सम्पत्ति थी पर मन में सुख और सम्मान की इच्छा थी। दो दिन जब उसे रोटी नहीं मिली तो उसने अपनी छुरी बेच देनी चाही। छुरी का कोई गाहक न मिला। निराश हो

उस ने छुरी से आत्महत्या कर अपने दुखों का अन्त कर देना चाहा परन्तु उस की धर्म-भावना उस के मार्ग में आ खड़ी हुई । इस विचार से वह कांप उठा कि खुदकशी करके उसे कभी खतम न होने वाली दोज़ख की आग में अनन्त काल तक जलना पड़ेगा । उमर भर उस ने मुसीबत झेली परन्तु वह दोज़ख की आग में जलने के लिये तैयार न था ।

"भूखे पेट मृत्यु की प्रतीक्षा करते-करते एक दफे बहिश्त पहुंच दूध और शहद के दरिया के किनारे, खजूरों के बाग में दाढ़ी में हूरों के हाथ से सुगन्ध मलवाने के खयाल से वह मतवाला हो उठा पर उपाय ? सोचते-सोचते उसे ख़याल आया अगर वह गाज़ी हो जाय ? चल कर छावनी पहुंचा ताकि जुम्मे के रोज़ परेट पर सब से बड़े काफिर साहब को मार शहीद हो जाय ।

"उसे आशा थी कि उसे तुरन्त गोली से उड़ा दिया जायगा लेकिन हाय किस्मत ! गोलियों से शरीर चलनी हो जाने पर भी वह शहीद न हो पाया । एक गहरा और लम्बा श्वास लेकर उस ने कहा—खैर, अब फांसी हो जायगी ।

"फांसी के खयाल से वह भयभीत न था परन्तु उसे यह सम्मानजनक नहीं जान पड़ता था । पठान का मुकदमा अदालत में गया । वहां भी मुझे बयान देना पड़ा । बयान देते समय मैं जानता था कि मैं उसे फांसी के तख्ते की ओर ले जा रहा हूं । उस की ओर आंख उठा कर देखने का मुझे साहस न हुआ ।

"उसे फांसी का हुकुम हो गया । मैं सिर लटकाये अदालत से लौटा—मानो मुझ से कुछ अनुचित कार्य हो गया हो ।

"उस दिन से जब कभी मृत्यु या हिंसा का चर्चा किसी रूप में सुनता या देखता हूं, मुझे उस गाज़ी की बात याद आ जाती है । उस के घोर अपराध के प्रति घृणा न होकर मन में करुणा ही हो आती है । अच्छा अब बताइये, यदि इस बिल्ली को ही उठा कर फांसी पर लटका दिया जाय ?

"···लेकिन क्या हत्यारों को यों खुला छोड़ दिया जा सकता है ?"

"क्या हिंसा-अहिंसा का विवेचन हम इरादे या विचार से कर सकते हैं···?"

समाज सेवा

विजय दशमी की आठ छुट्टियां मानने के लिये नाथ लाहौर आया था और मैं उस के आतिथ्य में उपग्रह की तरह उस के साथ-साथ लटकता फिर रहा था।

'बन्देमातरम्' में एक विज्ञापन पढ़ कर नाथ ने कहा—"आज सांझ को एस० पी० एस० के० (Society for the promotion of scientific knowledge) के हाल में चलना होगा।"

पूछा—"क्यों वहां क्या है ?"

उत्तर मिला—"एक लेक्चर है ?"

लेक्चरों के प्रति नाथ के हृदय में ऐसा अनुराग उत्पन्न हो गया है, यह मैं न जानता था। पूछा—"कैसा लेक्चर ?"

नाथ ने कहा—"कुछ ठीक याद नहीं पर लेक्चर है। जादू की लालटेन से लेक्चर है, शाम के पांच बजे। 'बन्देमातरम्' में विज्ञापन था, तुम्हें खयाल नहीं ?"

हंस कर मैंने कहा—"जादू की लालटेन ! तो चलो सिनेमा ही क्यों नहीं चलते ? इस जमाने में जादू की लालटेन तो ऐसे समझो जैसे बैलगाड़ी पर सफर करना।"

नाथ ने उत्तर दिया—"नहीं, तुम नहीं समझते।"

मैं मन में हंस कर रह गया। एक ज़माना था, नाथ हमारे कालिज के 'चलते' गिरोह का मनोनीत नेता था। उस समय यह शेखी उसे शोभा दे सकती थी परन्तु अब नाथ लाहौर से दूर सहारनपुर में रहता है। यदि वह अब भी लेक्चर, सिनेमा और थियेटर के बारे में हम लोगों की अपेक्षा अधिक जानकारी का दावा करे तो दुस्साहस के अतिरिक्त और क्या कहा जायगा ?

मन ही मन कहा—"देखो बेटा, देखो ! जादू की लालटेन ही देखो ! सहारनपुर में कठपुतलियों का नाच देखते होगे, तुम्हारे लिये यही बहुत है।"

हाल में विशेष भीड़ न थी लेकिन नाथ कुर्सी पर न बैठ दायीं ओर की दीवार के सहारे ही खड़ा हुआ और मैं उसकी अर्दली में मौजूद था। व्याख्याता थे, प्रोफेसर आदरे। व्याख्यान का विषय था—'सभ्यता के विकास में नारी का स्थान।'

प्रोफेसर आदरे ने दक्षिण द्वीपों के अर्ध-जंगली समाज, आस्ट्रेलिया के बुश-मैन तथा नीग्रो और रेड-इण्डियन लोगों की सामाजिक व्यवस्था के चित्र दिखा कर यह बताया कि समाज में संयोजक और व्यवस्थापक का स्थान दरअसल नारी का है। पुरुष समाज निर्माण और सुव्यवस्था के लिये नारी का आभारी है और भविष्य में नारी फिर अपना स्थान ग्रहण कर समाज को पागल हो जाने से बचायेगी।

व्याख्यान बुरा नहीं था परन्तु मेरा ध्यान उसमें न लगा। नजर उठा कर नाथ की ओर देखा—आपकी दृष्टि लालटेन के चित्रों की ओर नहीं बायीं ओर पहिली तीन आधी लाइनों में बैठी महिलाओं की ओर थी। विशेष निरूपण करने पर जान पड़ा, पहिली लाईन की पहिली कुर्सी पर ही उसका लक्ष था।

कोहनी से टोहका देकर मैंने पूछा—"क्या यही लेक्चर सुन रहे हो ?"

मेरे प्रश्न का उत्तर न दे उसने पूछा—"जानते हो वह कौन है ?"

वह चेहरा मेरे लिये परिचित नहीं था। पूछा—"क्यों ?"

एक गम्भीर निश्वास छोड़ नाथ ने कहा—"देखते नहीं आधुनिक रमणी समाज में जिन तीन 'तकारों' सुशिक्षिता, सुसंस्कृता और सुलंकृता का होना जरूरी है, उनका इसमें कितना प्राचुर्य है ?"

नाथ का कहना ठीक था। शास्त्र की व्यवस्था से युवती की आयु मुग्धा-वस्था को पार कर चुकी थी पर चेहरे पर मोह की मात्रा अभी यथेष्ट थी। जल के किनारे फूले हुये, वायु के झोंके से लहराते हुये कांस के समान पग-पग पर लचकते हुये उसके नेत्र। लता के समान लचीले शरीर से लावण्य झड़ा पड़ रहा था। मुख के उस कच्चेपन से—मैं नहीं समझता वह पाउडर होगा—कौमार्य की पुष्टि हो रही थी। झीनी पोशाक, बिना फ्रेम की चिमटीदार ऐनक—सुसंस्कृता के सब चिन्ह मौजूद थे।

नाथ की ओर देख कर मैंने पूछा—"प्रेम तरंग' (Love wave) का ज़ोर हो रहा है।"

गम्भीर मुद्रा से उसने उत्तर दिया—"चुप रहो !"

व्याख्यान समाप्त होने पर जब यह रमणियों में श्रेष्ठ रमणी, ललित उपेक्षा

से आधे सिर पर आंचल टिकाये, बिना बांह का ब्लाउज पहिरे, नाक पर चिमटीदार ऐनक को संभालते हुये चली तो नाथ मंत्र-मुग्ध की भांति उसकी ओर देख रहा था।

उपस्थित जनता में हम लोगों के परिचित श्रीयुत विष्णु और श्रीमती विष्णु भी थे। पूछने पर पता लगा, उस भव्य रमणी रत्न का नाम था—कुमारी 'ऊषा मेहता।'

नाथ ने विष्णु से पूछा—"क्या उनसे परिचय नहीं हो सकता?"

विष्णु ने परिचय की इच्छा का कारण जानना चाहा। मैंने समझाया—"नाथ पर प्रेम-बाण चल गया है और वह भी प्रथम दृष्टि में।"

निरुत्साह की हंसी हंस कर विष्णु ने कहा—"असम्भवम्, वह देखने में जैसे संगमरमर की मूर्ति है भीतर से भी वैसे ही ठण्डी और उद्रेक शून्य।"

श्रीमती विष्णु ने अभिमान से जरा सिर ऊंचा कर कहा—"उसने विवाह न करने की प्रतिज्ञा की है। कितनी ही जगह वह इन्कार भी कर चुकी है।"

विद्रूप से विष्णु बोला—"वह कामिनी का आधुनिक संस्करण है। पुराने ज़माने के 'काम' के पांचों बाण उस पर व्यर्थ हैं।"

नारी जाति के सम्मान की रक्षा के अभिप्राय से श्रीमती विष्णु ने विरोध में कहा—"स्त्री समाज की सेवा को उसने अपने जीवन का व्रत बना लिया है। उसी में वह अपनी आयु लगा देना चाहती है। इसमें बुराई क्या है?" और भी अधिक उत्साह से उन्होंने कहा, "भाई, विवाह वह कभी नहीं कर सकती। विवाह किसलिये किया जाता है, यह वह जानती ही नहीं।"

सहानुभूति से मैंने नाथ की ओर देखा, वह पर्वत की भांति अचल था। उस ने कहा—"आप एक दफ़े उन्हें अपने यहां निमंत्रित कीजिये, शेष देखा जायेगा।"

निमंत्रण किस बहाने दिया जाय, यही समस्या थी। नाथ को कभी-कभी ऐसी सूझ जाती है कि जिस पर किसी राष्ट्र का बनना-बिगड़ना निर्भर हो सकता है। विष्णु के कन्धे पर हाथ रख उसने कहा—"क्यों नहीं तुम मेरे विदेश से लौटने के उपलक्ष में एक पार्टी दे देते?"

"खूब!" मैंने कहा। चीनी बनाने के काम का अनुभव प्राप्त करने के लिये नाथ छः मास जावा द्वीप में रह आया था। वहां से लौटे हुये भी उसे प्रायः नौ मास हो चुके थे। तब से वह अपने चीनी के कारखाने में व्यस्त था। यह था उसका विदेश से लौटना। इसमें इतना सत्य ज़रूर था कि जावा से लौटने के बाद से नाथ ने विष्णु का आतिथ्य ग्रहण न किया था।

एक निमंत्रण पत्र गढ़ा गया—

"प्रिय बन्धु श्री प्रमोदनाथ के दक्षिण द्वीपों के भ्रमण से लौट आने के उपलक्ष में···वार···तिथि को संध्या चार बजे आप मेरे मकान···गली में चाय गोष्ठी में सम्मिलित होने की कृपा कीजिये—अति कृपा होगी।"

श्रीमती विष्णु मिस मेहता की सहपाठिन थीं। मिस मेहता के कार्ड पर उन्होंने अपनी ओर से भी एक पंक्ति और जोड़ दी।

हम लोग गोष्ठी के प्रबन्ध में लगे। नाथ का अनुरोध था, इन्तजाम पुर-तकल्लुफ हो और नाथ स्वयं सार्वजनिक पुस्तकालय में जाकर, विश्व कोश में जावा-सुमात्रा के सम्बन्ध में गवेषणा करने लगा।

निमंत्रितों की संख्या परिमित थी। मिस मेहता समय से कुछ देर बाद एक मोटर पर उपस्थित हुईं। नाथ पहिले ही मालूम कर चुका था, मिस मेहता के यहां अपनी कार नहीं। अन्दाज़ा यह हुआ कि कार मंगनी की है। मिस मेहता के हाथ में अंग्रेजी का वह सचित्र साप्ताहिक था जो शायद ही कोई गम्भीर पाठक पढ़ता हो। इस से कुमारी जी की साहित्यकता का अनुमान हो गया।

कुमारी जी ने आधी अंग्रेजी और आधी पंजाबी में कहा—···"So sorry मैं लेट हो गई।" और उपस्थित लोगों को झुक कर अभिवादन किया।

श्रीमती विष्णु ने परिचय कराया—"मिस ऊषा मेहता, जलविद!" और फिर नाथ की ओर देख कर कहा, "मि० प्रमोदनाथ शुक्ल, आप दक्षिण द्वीपों में छः मास भ्रमण करके आये हैं।"

नाथ की प्रशान्त गम्भीरता और भद्रता की सीमा न थी। उस ने विनय से मेज़ तक झुक कर परिचय ग्रहण किया और जब तक मिस मेहता बतख की गर्दन की तरह लचक कर बैठ नहीं गईं, वह खड़ा ही रहा।

चाय की पहली प्याली समाप्त होते न होते गोष्ठी में प्रसंग चल पड़ा दक्षिणी द्वीपों का। नाथ ने कहा—योरूप की अपेक्षा उस की अनुरक्ति एशिया की संस्कृति से ही अधिक है इसलिये उस ने योरूप न जाकर 'प्राचीन सभ्यता के इतिहास के एलबम' इन द्वीपों की ही यात्रा की।

जो कुछ उस ने इन महत्वपूर्ण द्वीपों में देखा वह संसार के किसी भी अन्य देश में अप्राप्य है। इन द्वीपों की सामाजिक समस्याओं की उस ने विशेष जानकारी प्रकट की।

मिस मेहता ने अत्यन्त गम्भीरता से प्रश्न किया—"Indian women (भारतीय स्त्रियों) की अपेक्षा आप ने वहां की women (स्त्रियों) में क्या

फरक देखा ?"

उत्तर में निहायत वाकपटुता से नाथ ने योरूप और अमेरिका की संस्थाओं का वर्णन शुरू किया। मज़ा यह कि किसी ने न पूछा, तुम योरूप या अमेरिका कब गये और उस का प्रसंग से क्या सम्बन्ध ?

नाथ ने मौका देख मिस मेहता को कई दफे 'मिस ऊषा' और 'ऊषा जी' कह कर सम्बोधन किया और फिकरे के फिकरे अंग्रेजी में बोल कर यह प्रकट कर दिया कि इस यात्रा के बाद से अंग्रेजी में बोलना ही उस के लिये अधिक स्वाभाविक है। वह यदि पंजाबी बोलता है तो केवल दूसरों की सुविधा के लिये।

नाथ ने कहा—"जितना धन और श्रम देश में राजनैतिक आन्दोलन और दूसरी समस्याओं पर व्यय हो रहा है, यदि उस का आधा भी स्त्रियों की उन्नति पर हो तो फल चौगुने से अधिक हो सकता है।" मिस मेहता सुन कर फड़क उठीं। नाथ ने कहा, "सुविधा होते ही वह इस विषय पर एक पुस्तक लिखने वाला है लेकिन यह काम दरअसल स्वयं स्त्रियों के करने का है। पुरुष का अधिकार केवल सहायता करने का है।"

नाथ की यह वक्तृता मिस ऊषा को देववाणी के समान जान पड़ी। नाथ ने कहा—"इस कार्य के लिये देशव्यापी आन्दोलन और संगठन की आवश्यकता है। श्रीमती विष्णु को सम्बोधन कर मिस मेहता के अभिप्राय से उस ने कहा, "स्त्रियों केवल पुरुषों की सेवा का ही साधन क्यों बनी रहें; उन का अपना स्वतन्त्र जीवन क्यों न हो ? इस आन्दोलन की धुरी लेकर आप लोगों को आगे बढ़ना चाहिये।"

नाथ के इस व्याख्यान से श्रीमती विष्णु भी बहुत प्रभावित हुईं। मिस मेहता ने कोमल स्वर में कहा—"इस विषय पर मैं भी कुछ लिख रही हूं, यदि आप को समय हो तो कुछ मेरी सहायता कीजियेगा।"

मैं नाथ के समीप ही था। खांसने के बहाने रूमाल मुंह के सामने कर मैंने धीरे से उस के कान में कहा—"मान गये गुरु !"

नाथ को उत्तर देने की फुर्सत नहीं थी। मिश्र मेहता के उत्तर में नाथ ने जो कुछ कहा उस से मालूम हुआ कि उस ने अपना जीवन सामाजिक-क्रांति के अर्पण कर दिया है। इस प्रकार के किसी भी कार्य में सहयोग देने के लिये वह 'सर्वतोभावेन' तत्पर है।

गोष्ठी समाप्त हुई। आमन्त्रित लोग चलने को तैयार हुये। नाथ ने मिस मेहता की ओर अग्रसर होकर कहा—"आप की कार तो आई नहीं अभी तक ?"

मिस मेहता ने उपेक्षा से उत्तर दिया—"ऐसी क्या ज़रूरत है, धूप तो चली ही गयी, मुझे समीप ही एक फ्रेण्ड के यहां होते हुये जाना है।"

नाथ जान चुका था, मिस मेहता पुरानी अनारकली में रहती हैं। अपनी सोने की रिस्टवाच की ओर देख कर बोला—"समय तो अधिक है नहीं, मुझे भी दो-एक जगह जाना है, चौबुर्जी भी जाना है। एक टैक्सी मंगवा लें!"

यह चपरासी का काम मेरे सिर पड़ा। उसे कोसते हुये समीप के मकान से फोन कर एक टैक्सी मंगा हाज़िर कर दी। मेरी अनुपस्थिति में ही उन दोनों के गाड़ी में एक साथ जाने की बात तय हो गयी।

अगले दिन संध्या चार बजे मिस मेहता के यहां नाथ निमंत्रित था। रात भर नाथ गूढ़ विचार में रहा। सुबह चाय पीने के बाद मुझे उसके साथ प्यारेलाल एण्ड संस मोटर वाले के यहां जाना पड़ा। नाथ ने वहां पहुंच एक गाड़ी देखने की इच्छा प्रकट की।

मैनेजर ने अत्यन्त अभ्यर्थनापूर्वक पूछा—"किस मेक की मोटर आप देखियेगा?"

नाथ ने उपेक्षा से उत्तर दिया—"घर से कसम खाकर नहीं चला हूं, जो भी पसन्द आ जाय।"

मैनेजर ने गाहक के मज़ाक का स्वागत दांत निकाल कर किया और एक आस्टिन के पास ले जा हमें खड़ा कर दिया। नाथ ने मॉरिस और डॉज का ज़िक्र कर कहा—"मैं सदा छः सिलिण्डर की गाड़ी पसन्द करता हूं। गलती से एक चार सिलिण्डर खरीद ली है। उसने बहुत परेशान किया, आखिर निकाल देनी पड़ी।"

कार के साथ ही साथ उसने दो-तीन किस्म की लारियों की भी कीमत दरयाफ्त की। आखिर आस्टिन पर सौदा तय हुआ। टायर बदलवाने की ज़रूरत थी, कुछ फालतू चीज़ें भी उसमें और ज़रूरी थीं।

साढ़े पांच हज़ार का बिल बना। मैं हैरान था—क्या नाथ आज फज़ीहत कराने पर तुला है?

बिल हाथ में ले उसने कहा—"गाड़ी फिट हो जाने पर शोफर आकर टेस्ट करेगा और वही चेक देकर गाड़ी ले जायगा।" बिल उसने जेब में रख लिया।

दुकान से अपने को सही-सलामत निकल पाया देख, हाथ जोड़ उसे प्रणाम कर कहा—"धन्य हो गुरू !"

इसके पश्चात नारायणदास एण्ड संस मोटर मर्चेण्ट की बारी आई। यहां एक ब्यूक सेलून खरीदने का फैसला हुआ। साढ़े छः हजार का बिल जेब में डाल और शाम तक गाड़ी तैयार हो जाने पर शोफर के चेक दे जाने और ले जाने की बात यहां भी तय हुई।

यहां से हयात फर्नीचर वाले के यहां पहुंचे। एक रोज़ वुड का ड्राइंग रूम सेट, एक ड्रेसिंग टेबल और गार्डन सेट पसन्द किया गया। साढ़े सत्रह सौ का बिल जेब में रख हम लोग कृष्णा कारपेट स्टोर में गये। यहां कुछ कालीन और दरियां पसन्द की गयीं। डेढ़ हज़ार का बिल जेब में रख शाम को मुंशी के आकर चेक दे सामान ले जाने का वायदा कर हम लोग बाहर आये।

घड़ी में साढ़े तीन बज गये। पैदल ही हम लोग म्युनिसिपल मार्केट की तरफ लौटे। चार बजने में ठीक छः मिनिट रह जाने पर नाथ टैक्सी पर सवार हो मिस मेहता के यहां पहुंचा।

गाड़ी की आवाज सुन मिस मेहता हाथ में ट्रिब्यून लिये बरामदे में प्रकट हुई। नाथ ने मुस्करा कर कहा—"भय था, लेट हो जाऊंगा परन्तु शोफर समय पर ले ही आया।"

अपनी कलाई को ऊपर उठाते हुये मिस मेहता ने कहा—"आप तो बिलकुल ठीक समय पर ही आये हैं।"

नाथ ने उत्तर दिया—"विदेश में समय का इतना खयाल रखना पड़ता है कि मुझे अब उस की आदत हो गई है, जरा भी अव्यवस्था होने से बड़ी कलख सी होने लगती है।"

समय के पश्चात् मौसम की चर्चा चली। नाथ ने बताया लाहौर की अपेक्षा सहारनपुर का मौसम कहीं अच्छा है।

तब काम की बात शुरू हुई। नाथ ने जापान के स्त्री समाज से भारत के स्त्री समाज की तुलना कर कई तजवीजें सुधार की पेश कीं। हिन्दू समाज के पारिवारिक जीवन की आलोचना हुई। इस गम्भीर विवेचना को मिस मेहता ने जिज्ञासाभाव से सुना। बात-चीत का कांटा बदला, दूसरी लाइन आई।

नाथ ने चाय की प्याली की ओर देख कर कहा—"यह देखिये, छोटी-छोटी

बातों से जीवन का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। यह प्याली कितनी मामूली चीज़ है परन्तु इस का भी हम पर कितना प्रभाव पड़ता है। कितनी देर से मैं उसे देख रहा हूं और इसे चुनने वाले की कला की सूझ और परख की सराहना कर रहा हूं। इस से चाय पीने में एक प्रकार का विशेष संतोष होता है। एक मेरा जीवन है, जिस में सब काम मैशीन की तरह होता है, कला और सौन्दर्य की उस में चर्चा नहीं। कोठी है शायद आवश्यकता से कुछ बड़ी परन्तु मेरे रहने लायक चार कमरे भी ढंग के नहीं। बैरे को मतलब है अपनी तनख्वाह से। बंगले के चारों ओर माली फूल न बो कर तरकारी बोता है, शायद इस से कुछ आमदनी उसे हो जाती हो। इस दफे यह निश्चय करके आया था कि घर को घर बनाऊंगा परन्तु सोचता यह हूं कि अपनी परख से जो कुछ चुन कर लूंगा उसे स्वयं भी पसन्द कर सकूंगा या नहीं। अपना हिसाब तो यह है, दूकानदार ने जो कुछ सब से अच्छा बता दिया, ले लिया लेकिन दूकानदार को मतलब रहता है सब से पहले भद्दी चीज निकाल देने में।

"आज कुछ फर्नीचर खरीदने गया था। शौक जरूर है, परख हो न हो। आप के यहां का ढंग और सिस्टम देख कर ईर्ष्या होती है। काश! मेरी भी जगह ऐसी ही होती। इस कालीन को ही देखिये, क्या खूब टेस्ट है और फिर जिस वजह से बिछाया गया है···!

"मैंने भी एक कालीन खरीदा है", जेब से बिल निकालते हुये, "यह देखिये दूकानदार ने असली ईरानी बताया है, आगे उस का ईमान जाने।" मिस मेहता ने बिल की ओर देखा, उनकी आंखें चढ़ गईं। "फर्नीचर के बारे में भी मुझे दूकानदार की मान लेनी पड़ी। यह देखिये—ओफ! वह शायद गाड़ी में है, हां, यह देखिये!···अच्छा आप गाड़ी कौन-सी पसन्द करती हैं?"

मिस मेहता की कनपटियों पर खून का वेग बढ़ गया। उस की एक सहेली के यहां ओवरलैण्ड गाड़ी थी और दूसरी के यहां ब्यूक। झेंपते हुये उस ने कहा—'ओवरलैंड भी कुछ बुरी नहीं वैसे ब्यूक अच्छी रहती है।"

नाथ ने कहा—"ठीक पर मेरी हालत देखिये! पिता जी ने एक फोर्ड खरीदी थी। उसी छकड़े पर सन्तोष किये बैठा था। अब एक आस्टिन और ब्यूक सैलून ले चला हूं। आस्टिन घूमने-फिरने के लिये और ब्यूक सैलून मेरठ, देहली और देहरादून आने-जाने के लिये। यह नहीं कि मैं निरा जड़ हूं परन्तु केवल अपनी एक जान के लिये कुछ करते ग्लानि-सी होती है।"

इस सरलता से मिस मेहता की समवेदना पिघल पड़ी। उन्होंने एक दीर्घ

निश्वास छोड़ कर कहा—"अकेला जीवन वास्तव में नीरस होता है।"

उन्होंने पुकारा—"माया!"

नौकर हाजिर हुआ। उन्होंने कहा—"यह चाय ठंडी हो गई है। गर्म चाय बना लाओ।"

संकोच से नाथ ने कहा—"यह देख लीजिये, यही मेरा हाल है। सभी काम इस ढंग से होते हैं। यहां आप की समवेदना ने मुझे बचा लिया वर्ना दो ही रास्ते थे—या तो ठण्डी चाय पी जाता या फिर बिना पिये ही रह जाता।"

एक विचित्र अनुभूति से मिस मेहता के चेहरे की त्वचा झमझमा उठी और आंखें उन्मीलित प्रायः हो गईं।

सोचा था—साढ़े पांच तक नाथ लौट आयेगा परन्तु कहीं लगभग दस बजे आप आये। पूछा—"गुरु इतनी देर कहां थे?"

उत्तर मिला—"मिस मेहता के साथ सिनेमा चला गया था।"

तीन दिन तक नाथ प्रायः गायब-सा रहा। चौथे रोज सहारनपुर जाने से पहले उस ने अत्यन्त गम्भीरता से कहा—"कम से कम जाकर मुझे कोठी का रंग-रूप तो ठीक करना है। तुम कचहरी खुलते ही मेरी दर्खास्त सिविल मैरिज के लिये दे देना।"

मैंने विस्मय से पूछा—"क्या···किस से?" और नाथ ने गम्भीर भाव से कहा, मिस ऊषा से।"

इस समाचार से पेट का पानी उबलने लगा। दौड़ा-दौड़ा श्रीमती विष्णु के यहां पहुंचा और खबर सुना कर कहा—"देख लिया भाभी!"

उन्होंने अपनी भूल स्वीकार न कर कहा—"तो इस में हर्ज ही क्या है! दोनों मिल कर समाज सेवा करेंगे।"

दो वर्ष पश्चात् मंसूरी जाते समय मैं नाथ के यहां एक दिन के लिये ठहरा। उस समय भी पुरानी कोठी के अहाते में एक जर्जर फोर्ड गाड़ी खड़ी थी और खाली ज़मीन में 'पिटूनिया' की जगह कुम्हड़ा और 'हालीहाक' की जगह भिण्डी फूल रही थी। प्रायः डेढ़ बरस की एक लड़की फ्राक पहिरे ठुमकती-ठुमकती भीतर के किसी कमरे से आई और बरामदे में बैठे स्पेनियल कुत्ते का आलिंगन कर उस का कान चबाने का यत्न करने लगी। इस अनाचार के विरोध में भीतर से स्त्री कंठ की आवाज़ आई—"न मुन्नी, छी!"

आवाज़ का अनुसरण करती हुई निकली महिला। रंग तो जरूर मिस मेहता का था परन्तु शरीर में लचकने की जगहें भर गई थीं। बिना फ्रेम की

चिमटीदार ऐनक गायब थी। सफेद बारीक साड़ी पर दो-एक हल्दी के दाग भी थे।

नमस्ते कर मैंने पूछा—"भाभी कहिये, समाज सेवा का काम कैसे चल रहा है?"

भाभी उत्तर की तलाश में ही थीं, नाथ ने हाथ की सिगरेट का आखिरी कश खेंच कर कहा—"समाज सेवा का नहीं समाज बढ़ाने का…।"

प्रेम का सार

उन दिनों पेशावर से चरस की आमद गुप्त रूप से इतने भयंकर परिमाण में हो रही थी कि एक्साइज़ के साथ पुलिस वाले भी परेशान थे। न दिन को आराम न रात को चैन। गुप्त रूप से नशीली चीज़ों का व्यापार करने वालों को पकड़ने में बुद्धि की मौलिकता के लिये जितनी गुंजाइश है उतनी दूसरे जुर्मों में नहीं। किस रूप में किस चीज़ के भीतर चरस नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता।

लाहौर के बड़े स्टेशन के सामने टहलता हुआ मैं तेज नजर से पेशावर एक्सप्रेस के मुसाफिरों को ताड़ रहा था। लम्बी चादर में सिर से पैर तक लिपटी, सड़क को बीचों-बीच से चीरती हुई एक बुढ़िया कुछ दुविधा की सी अवस्था में मेरे सामने से निकली। उस औरत को देख मुझे कुछ सन्देह हुआ।

इतने दिन पुलिस में काम कर यही सीखा था कि जहां सन्देह के लिये कोई प्रत्यक्ष कारण न भी हो वहां भी सन्देह करना चाहिये। कितनी ही बुरकापोश, भले घर की स्त्रियों के असबाब में से अनेकों बेर सेरों चरस निकाल चुका था। किसी 'घाघ' ने इसी बुढ़िया के जरिये दो-चार सेर निकालने की सोची हो; क्या अचरज!

"ए माई! ओ बुढ़िया! इधर आओ!" मैंने उसे पुकारा।

एक हाथ से अपनी छोटी-सी गठरी को सीने पर दबाये, दूसरे हाथ से चादर सम्भालते हुये एक बेर मेरी ओर देख, मेरी पुकार को अनसुनी कर, वह अपनी राह चलती गई।

सन्देह पुष्ट होने की वजह थी। जरा डांट कर मैंने कहा—"इधर आओ।" मानों उस ने कुछ सुना-समझा नहीं। केवल एक दफे मेरी ओर देख वह चली जाने लगी। साथ के कांस्टेबल ने आगे बढ़ उसे रोक लिया।

उस के हाथ की छोटी पोटली की ओर संकेत कर मैंने पूछा—"इस में

क्या है ?" हाथ की उंगलियों को नचा, व्याकुलता भरे अस्पष्ट स्वर में उसने जो कुछ अर्लम-पर्लम कहा वह मेरी समझ में कुछ न आया। उसकी चालाकी भांप कर मैंने अपने प्रश्न को पश्तो में दुहराया। व्याकुलता से गिड़गिड़ा कर उसने जो उत्तर दिया मैं कुछ समझ न सका।

परेशान था, यह औरत पागल बन रही है या दरअसल पश्तो और पंजाबी न समझ कोई तीसरी ही बोली बोलती-समझती है। साथ के सिपाही ने उसे ज़बरदस्ती समझा देने के अभिप्राय से खूब ऊंचे स्वर में डांट कर पूछा—"इसमें क्या है ?" पर फल कुछ न हुआ।

आखिर, यह औरत इतनी ही वे-बूझ है तो अकेली लाहौर जैसी जगह में पेशावर-एक्सप्रेस से, और फिर रात के वक्त, आयी कैसे ? यहां इसका क्या काम है ? मैं इसी उधेड़बुन में फंसा था। उस समय कासिम—साथ के सिपाही ने दोनों हाथों से इशारा कर कहा—"हती, कश्मीर हती ?"

औरत ने एक लम्बा सांस लेकर हामी भरी। यह तो समझा कि यह औरत काश्मीरन है परन्तु इससे भी तो इसकी गठरी में चरस हो सकती है या इस के पीछे कोई दूसरा रहस्य है। इस बात का ही क्या प्रमाण है कि यह दिन-रात लाहौर आने-जाने वाले बुर्दाफ़रोश काश्मीरियों के गिरोह में से नहीं है। जिस तरह वह अपनी गठरी को हाथ न लगाने दे रही थी, शक के अलावा कोई राह ही नहीं थी। कासिम ने काश्मीरियों के लिंग-भेद अज्ञान की नकल करते हुये पूछा—"कित्थे जान्दा ?" (कहां जा रही हो ?) फिर जवाब नदारद।

कासिम ने कहा—"हुजूर, यह औरत बदमाश है, मक्कर साध रही है।"

कुछ सोचकर मैंने हुक्म दिया—"एक टांगे पर इसे बड़ी कोतवाली ले चलो।" बड़ी हाय-तोबा के बाद वह टांगे पर बैठी।

पीरहुसैन कान्सटेबल काश्मीरी है। सैयद होने के नाते उसके आध्यात्मिक प्रभाव का भी अन्त नहीं। उसे बुला मैंने उस औरत से बात करने को कहा। पीरहुसैन ने समीप पहुंच, आश्वासन देने की मुद्रा में औरत को सम्बोधन कर अपनी अगम भाषा में दो वाक्य कहे। औरत का भय काफूर हो गया। वह उस के समीप सिमिट आयी और आंखों पर अपनी मैली चादर की खूंट रख, सिसकती हुई बहुत कुछ बक गयी।

पीरहुसैन ने बताया कि वह अपने मर्द का पता पूछ रही है। उसी को ढूंढने लाहौर आयी है। कई बरस हुये वह कमाई करने लाहौर आया था पर लौटा नहीं। कई दफे चिट्ठी लिखने पर भी वह नहीं लौटा। उसी को लिवा ले जाने

के लिये यह आयी है और लेकर ही जायेगी ।

मैंने कहा—"इसका मर्द तो देखा जायगा, पहिले इसकी गठरी खुलवाओ !"

पीरहुसैन के कहने से उसने कुछ संकोच से गठरी खोल दी । चिथड़े लगी चादर के एक छोर में दो-एक और मैले कपड़ों के टुकड़ों में कई दिन की बासी मकई की रोटी का चूरा था । काश्मीरी ढंग की एक पुरानी मर्दानी वास्कट भी थी, जिसमें जगह-जगह बेहूदा ढंग से फूल-पत्ती की, काश्मीरी कला का अपमान करने वाली सोजनकारी बनी थी । कांच के गोल-गोल टुकड़े उसमें जड़े थे । इस वास्कट की तहें उसने बड़ी अनिच्छा से खोलीं मानो वह उसे किसी को दिखाना नहीं चाहती । इसके अलावा एक छुरा भी था जो उसने पीरहुसैन के बहुत आश्वासन दिलाने पर अपने कपड़ों के भीतर से निकाल कर बाहर किया। छुरा वह क्यों रखे है, बहुत पूछने पर भी इस बात का उसने कोई जवाब न दिया । मुंह मोड़ कह दिया—"ऐसे ही ।"

एक काश्मीरन, जिसने कभी अपने गांव से बाहर पैर नहीं रखा, अकेली लाहौर आती है । वह कहता है, अपने आदमी को ढूंढ़ने आई है परन्तु किसी भी आदमी या स्थान का पता वह नहीं जानती । एक मर्दानी वास्कट उस के पास है, जिसे वह छिपाना चाहती है और है उस के पास एक छुरा । मामले के पेचीदा होने में सन्देह ही क्या था ?

पीरहुसैन से मैंने कहा—"औरत चालाक मालूम पड़ती है और आश्चर्य नहीं, यदि यह किसी भयानक मामले में फरार हो । इस का भेद लो ।"

औरत को पीरहुसैन के सुपर्द कर मैं दूसरे कागज़ देखने में लगा । बीच-बीच में उस की तरफ ताक कर देख लेता । पीरहुसैन के बहुत देर तक समझाने के बाद इस स्त्री ने आंसू पोंछते हुये धीरे-धीरे अपनी बात कहनी शुरू की । कुछ देर बाद वह खूब हुचक-हुचक कर रोने लगी । पीरहुसैन उसे ढाढ़स बंधा रहा था । ऐसी अवस्था में बीच में बाधा डालना मैंने उचित न समझा । पीरहुसैन ने आकर मामला समझाया—

श्रीनगर से तीस-पैंतीस मील परे, बैरीनाग के आस-पास, इस औरत का घर है । वहां से सवा-दो सौ मील पैदल चल वह जम्मू पहुंची और स्टेशन-स्टेशन भटकती वह आखिर अपने पति की तलाश में पेशावर-एक्सप्रेस से लाहौर आ पहुंची है । पति का पता पूछने पर कहती है, वह लाहौर में है लेकिन ठिकाना नहीं जानती ।

"पता नहीं जानती तो क्या मर्द को अपने सिर में ढूंढ़ेगी !" मैंने कह

"या तो वह अपने पति का पता जानती है या उसे ढूंढ़ने नहीं आयी।" पीरहुसैन की मार्फत अपनी सहानुभूति का निश्चय दिला कर, डेढ़ घण्टे तक उस से पूछ-ताछ करने के बाद जो समझ पाया उस का सार यह है—

"तीस बरस हो गये मेरा पति फज्जा गांव के दूसरे जवान मर्दों के साथ मजदूरी कर रुपया कमाने लाहौर आया था। उसी समय मैंने कहा था—हमारे यहां जो कुछ है, पीर-फक़ीर का दिया बहुत है। आठ-दस भैंसें हैं, दस-बारह घुमा जमीन है, सेव, अखरोट और शहतूत के पेड़ हैं; मेहनत करने से इसी में सब कुछ हो सकता है। मेरी सास—उस की मां ने भी समझाया। मैं उस समय छोटी थी। मेरी उमर बीस साल से भी कम थी। उस ने डांट-डपट कर चुप करा दिया और कहा—सात महीने में सेबों में फिर फूल आते-आते वह लौट आयेगा। लाहौर में चांदी पैरों तले रुलती है। सब लोग जाते हैं; मैं क्यों नहीं जाऊंगा! मैं रोती रही, वह चला गया। सास और मैं सब काम करती थीं, खेत में हल हमें ही चलाना पड़ता था। सास नाराज़ होती, कहती—नकारे लड़के से लड़का न होना अच्छा।

"बरस गया, दो गये, तीन गये। मैं रोज रोती थी। बर्फ गलने पर परदेस गये लोग घर लौटते, मेरा मर्द न लौटता। दो बरस और गुजर गये। हाबला का मालिक रहमान लाहौर से लौटा। वह फज्जा की एक चिट्ठी लाया। लिखा था—"मुझे पुलिस ने झूठ-मूठ पकड़ लिया है। थोड़ा रुपया भेज दो तो मैं लौट आऊं।"

"सास और मैं बहुत रोईं। दो भैंसें बेच कर हमने चालीस रुपये भेज दिये। सास से छिपा डाकखाने के मुंशी से मैंने एक चिट्ठी लिखा दी कि जल्दी आजा, मां तेरी सख्त नाराज़ है और सख्त बीमार है। मैं रोती रहती हूं। मुझे बहुत डर लगता है, तू जल्दी आजा। मुझे सास गाली देती है कि मैंने तुझे भेज दिया कि तू मुझ से लड़ कर चला गया और अब अकेले काम नहीं होता। तेरी मां थक गई है और तेरे बिना तकलीफ है।"

मैंने पूछा—"रुपये की रसीद और चिट्ठी का जवाब आया?"

उस ने बताया—"रुपये की रसीद आई थी, चिट्ठी का जवाब नहीं आया।

मेरा विश्वास कर उस ने उस मर्दानी वास्कट की जेब से तीन रसीदें निकालीं। तारीख़ के हिसाब से इन में पहली पर सन् १६०६ अक्टूबर, भाटी दरवाज़ा, लाहौर के डाकखाने की मोहर थी। यह चालीस रुपये का मनीआर्डर था। पीछे एक अंगूठे का निशान था और उस की बगल उर्दू में लिखा था—

'फज्जा'। गवाह के भी हस्ताक्षर थे। रसीदें दे उस ने फिर किस्सा शुरू किया।

"साल पर साल गुजरने लगे, फज्जा नहीं लौटा। जो लोग लाहौर, अमृतसर कमाई करने जाते, उन से कभी-कभी फज्जा की खबर मिलती। कभी सुनती पुलिस ने पकड़ लिया है। कभी सुनती, नौकर हो गया है। कभी सुनती, दुकान कर अमीर हो गया है। सास बीमार होकर मर गई। मैं अकेली रह गई।

"फारू का ब्याह मुझ से पीछे हुआ था। उस के दो पठोरे जैसे बेटे हो गये और लड़की घर का काम करने को हो गई। हाबला की दोनों लड़कियों के यहां बच्चे हो गये। 'मामचू' की घरवाली मर गई पर उस के भी तगड़ा लड़का और एक लड़की हो गई।

"नौ बरस बाद लाहौर से एक आदमी खत लाया, लिखा था—मैं बीमार हो गया हूं। खर्च पास नहीं, बड़ी तकलीफ है। खर्च किसी तरह भेज दो मैं आ जाऊंगा। मैंने फिर एक भैंस बेची, दो अखरोट के पेड़ पागसू को आधे दामों दिये और उसे फिर चालीस रुपये डाक के मुंशी से भिजवाये और खत भी लिखवा दिया कि अब मैं अकेली रह गई हूं। तेरी मां भी मर गई है। सारा गांव मेरा दुश्मन हो रहा है। जिस के मर्द नहीं उस का क्या ठांव ? कोई खेत काट ले जाता है, कोई अखरोट झाड़ ले जाता है। हाबला ने शहतूतों पर से सब कीड़े चुरा लिये हैं और देखो, सब के दो-दो तीन-तीन बच्चे हैं, घर आते-जाते हैं, काम करते हैं, मेरा कोई नहीं। अब मुझे डर लगता है। मैं मांदी हो जाऊंगी। मुझे तेरी कमाई नहीं चाहिये। तू बस आ जा, हरगिज आ जा।

"अब के चिट्ठी आई कि तू घबरा मत मैं जरूर आऊंगा और लाहौर में वणज करूंगा। तुझे भी लाहौर ले आऊंगा, यहां बड़ा आराम है। तू फिकर मत करना, तुझे गहने बनवा दूंगा। मैंने फिर भी लिखवाया कि तू आजा, घर में बसना ठीक है। पराई जगह के पैर नहीं होते। बहुत नुकसान खेती और जानवरों का हो गया पर तू आयेगा तो सब हो जायेगा। मैं अभी जवान हूं, अभी हाथ-पैर चलते हैं। तेरे लड़के होंगे तो सब होगा। कोई नहीं आया, फिर खत भी नहीं आया।

"मैं कई दफे मांदी पड़ गई। घर में कोई नहीं था तब मामचू पानी भर कर दे जाता और भैंसों का दूध निकाल कर ले जाता। छः बरस और निकल गये तो मामचू ने कहा—'तू बूढ़ी हो गई, जवानी में हाथ-पैर चलते थे, काम-काज कर लेती थी। अब पांच-सात बरस की और बात है, फिर तो हाड़ बैठ जायेंगे; क्या करेगी ? मेरे साथ निकाह कर ले। मेरा लड़का है, दोनों को

कमा कर खिलायेगा । तेरे भी बाल-बच्चा हो जायगा तो अच्छा है नहीं तो क्या करेगी ?···मैं रोने लगी ।" वह इस समय भी रो रही थी ।

"मैंने कहा—नहीं फज्जा मेरा मर्द है वह आयगा तभी मेरा घर बसेगा । अब वह आ जायगा ।

"तीन बरस बाद फिर फज्जे का खत आया कि किसी महाजन का देना नहीं दिया, कैद हो गया है । तीस रुपये भेज दो तुरन्त आ जायगा । अब की मैंने एक घुमा जमीन पर करज ले डाकखाने से रुपया भिजवाया और लिखाया कि तेरे बिना सब बरबाद हो रहा है और कि तमाम उमर परदेस में बिताई, अब तो आकर घर करो, कि और सब लोगों के जवान लड़के घर कमा रहे हैं और मैं बूढ़ी मर रही हूं ।

"कोई नहीं आया । खत भी नहीं आया । सुना कि उस ने और ब्याह कर लिया । मैंने उसे खत लिखाया—तूने बुरा किया । खैर, तूने अच्छा किया । तू आजा और उस को भी ले आ । मैं दोनों की खिदमत करूंगी । रोटी का टुकड़ा दो वक्त मुझे देना । तू हरगिज़ आजा ।

"कोई नहीं आया । मैं थक गई । काम चौपायों और खेती का अब नहीं होता । मेरा क्या है, मैं खतम हो गई । जिस के लिये इतना सहा उसे लेने आई हूं । उसे ढूंढ़ कर पूछूंगी—बता तू घर क्यों नहीं आया ? घर को बरबाद किया, अब तू चल और कुछ नहीं, हमारे बाल-बच्चे न सही, हम चार दिन साथ रहेंगे । जो पहले पूरा होगा दूसरा उस को मिट्टी देगा ।"

वह फफक-फफक कर रोने लगी । मैं उस के जीवन के प्रति भाग्य के विद्रूप की बात सोचता रहा था । उस से पूछा—"क्या यह वास्कट फज्जा की है ? उस ने सिर हिला कर हामी भरी । इतनी प्रतारणा के बाद भी वह उस वास्कट को साथ ही लिये थी । शायद उमंग से अपने दूल्हे को सजा कर साथ ले जाना चाहती थी ।

मैंने पूछा—"यह छुरा किस का है ?"

आंखें पोंछ कर उस ने कहा—"मेरा ।"

मेरे पूछने पर कि छुरे का वह क्या करेगी, वह चुप हो गई ।

कुछ देर ठहर कर पीरहुसैन ने सान्त्वना के स्वर में प्रश्न को दोहराया ।

उस ने बिगड़ कर जवाब दिया—"उस ने मेरी तमाम उमर बरबाद कर दी, मैंने उस के लिये सब कुछ किया, उस के लिये मैं बांझ बनी । अब वह मेरे साथ नहीं जायगा तो मैं उसे कत्ल कर दूंगी !···"

सुन कर मैं कांप गया परन्तु क्रोध या घृणा उस के प्रति न कर सका। पुलिस स्टेशन में बैठ कर जो व्यक्ति खून करने का इरादा प्रकट करे···।

पीरहुसैन ने उस का वह छुरा उठा सन्दूक में बन्द कर दिया।

फज्जा की तलाश शुरू हुई। शहर के दस नम्बरिया बदमाशों का रजिस्टर देखा गया। उस में अनेक फज्जा अनेक रूप में मौजूद थे। फज्जा, फैजू, फजलू, फजले खां। इन में रफिया का फज्जा कौन है, यह जानने के लिये उस से उस के मर्द का हुलिया पूछा। उस ने बताया—

"देखने में बड़ा अच्छा है, जवान है, भली-भली दाढ़ी-मूंछ है, एक चोट का निशान दायें नथने पर है।"

दायें नथने पर चोट का दाग! रजिस्टर से मालूम हुआ, वह हीरामण्डी वाला फज्जा है। खोज करने पर मालूम हुआ, वह जमानत न दे सकने के कारण दफा १०९ में लाहौर सेन्ट्रल जेल में सजा काट रहा है। यह बात रफिया से कहने की नहीं थी।

शाह साहिब से मिल, सिफारिश करा, मियां याकूब हुसैन से फज्जा का मुचलका दाखिल करवा दिया। फज्जा को अलग बुला, डांट-फटकार कर घर जाकर आराम से रहने के लिये तैयार कर लिया।

जब उसे लाकर रफिया के सामने खड़ा किया, वे दोनों एक दूसरे को पहचान न सके।

सम्भवतः रफिया तेइस-चौबीस बरस के हट्टे-कट्टे जवान फज्जा की बात सोच रही थी। पीरहुसैन ने जब दोनों का परिचय कराया तो कितनी ही देर तक रफिया वज्राहत की भांति दांतों तले उंगली दबाये फज्जा की तरफ देखती रही, मुख से उस के शब्द न निकल सका।

फज्जा के सफेद बाल, झुर्रियों से भरे चेहरे, निस्तेज आंखें और दांतहीन मुख को देख वह स्वीकार न कर सकी कि यह वही उस का फज्जा है, जिस के लिये उस ने आयु भर तपस्या की है।

एक बहुत गहरी सांस ले, मुख से एक भी शब्द न बोल, सिर हिला कर वह एक ओर को हट गई और चादर में मुख छिपा कर न जाने वह कितनी देर तक रोती रही।

किसी को उस से कुछ कहने का साहस न हुआ। सांझ को पीरहुसैन ने उसे समझाया कि फज्जा को लेकर घर चली जा।

उस की आंखों से चिनगारियां निकल रही थीं, फुंकार कर उस ने कहा—"इस धोखेबाज, दगाबाज, जालिम ने मुझे मिट्टी कर दिया। मैं उस का मुंह नहीं देखूंगी।"

वह उस वास्कट को वहीं छोड़, अपनी चादर उठा, स्टेशन की ओर चल दी। उस समय कुछ कहने का अवसर न था, परन्तु खयाल आया—यह है तीस बरस की प्रेम साधना का सार!

पहाड़ की स्मृति

अब तो मण्डी में रेल, बिजली और मोटर सभी कुछ हो गया है पर एक जमाना था, जब यह सब कुछ न था। हमीरपुर से रुवालसर के रास्ते लोग मण्डी जाया करते थे। उस समय व्यापार या तो खच्चरों द्वारा होता था या फिर आदमी की पीठ पर चलता था। उन दिनों मैं मण्डी की राह कुल्लू गया था।

मण्डी नगर से कुछ उधर ही एक अधेड़ उमर की पहाड़िन को, बांस की टोकरी में खुरमानियां लिये सड़क किनारे बैठे देखा। पहाड़ी लोग अक्सर इस तरह कुछ फल-वल ले सड़क के किनारे बैठ जाते हैं और राह चलतों के हाथ पैसे-पैसे दो-दो पैसे का सौदा बेचते रहते हैं। खुरमानियां बहुत बड़ी-बड़ी और बढ़िया थीं।

मेरे समीप पहुंचते ही उस पहाड़िन ने बिगड़ी हुई पंजाबी में सवाल किया—"क्या तुम लाहौर के रहने वाले हो ?"

मेरी पोशाक देख कर ही शायद उसे यह खयाल आया होगा कि मैं लाहौर का रहने वाला हो सकता हूं।

सोचा—क्या यह मुझे पहचानती है ? उत्तर दिया—"हां, मैं लाहौर का रहने वाला हूं।"

उस की आंखें कद्रे खुशी से चमक उठीं, उस ने पूछा—"तुम परसराम को जानते हो ?"

विस्मय से मैंने पूछा—"परसराम ? कौन परसराम ?"

कुछ व्यग्र होकर उस ने उत्तर दिया—"परसराम ठेकेदार !"

कुछ मतलब न समझ फिर पूछा—"कौन परसराम ठेकेदार ?"

मैं जिस ओर से चल कर आ रहा था, उसी ओर हाथ से संकेत कर उस ने कहा—"वह दोनों पुल जिस ने बनवाये थे।"

बात मेरी समझ में न आयी। मैंने उत्तर दिया—"मैं परसराम को नहीं जानता। होगा कोई, क्यों ?"

उदास हो उसने कहा—"तुम लाहौर के रहने वाले हो और उसे नहीं पहचानते ! वह भी तो लाहौर का रहने वाला है।···परसराम ठेकेदार है न !"

पहाड़िन की अधीरता से कुछ द्रवित हो मैंने पूछा—"किस गली, किस मुहल्ले का रहने वाला है वह ?"

बहुत चिन्तित भाव से एक हाथ गाल पर रख कर उसने धीरे-धीरे कहा, "गली-मुहल्ला ?···गली-मुहल्ला नहीं, वह लाहौर का रहने वाला है। तुम भी तो लाहौर के रहने वाले हो, उसे नहीं पहचानते ?"

उस औरत की नादानी पर मैं हंस न सका। उसे समझाने की कोशिश की कि लाहौर बहुत बड़ा शहर है। अधिक नहीं तो दो-ढाई लाख आदमी लाहौर में बसते होंगे। वहां एक-एक मुहल्ले में इतने आदमी हैं कि एक दूसरे को नहीं पहचान सकते। मैं हीरा मण्डी में रहता हूं। यदि परसराम ठेकेदार मजंग में रहता हो, तो वह मुझ से साढ़े तीन मील दूर रहता है, हालांकि वह भी लाहौर में रहता है और मैं भी लाहौर में ही रहता हूं और हम लोगों के बीच दूसरे लाखों आदमी रहते हैं।

बात औरत की समझ में नहीं आयी। उसकी आंखों की प्रसन्नता काफूर हो गयी। गाल पर हाथ रख कर धीमी आवाज में उसने कहा—"वह लाहौर का रहने वाला है। लम्बा, गोरा-गोरा, प्यारी-प्यारी आंखें हैं, तुम से कुछ जवान है, भूरा-भूरा कोट पहनता है, रेशमी साफा बांधता है। वह लाहौर का रहने वाला है।"

मैंने दुखित हो उत्तर दिया—"नहीं, मैं नहीं पहचानता।"

उसकी टोकरी के पास उकड़ूं बैठ खुरमानियां चुन-चुन कर मैं अपने रूमाल में रखने लगा। सहानुभूति के तौर पर मैंने पूछा—"क्यों, तुम्हें उससे कुछ काम है क्या ?"

गहरी सांस खींच कर उसने कहा—"परसराम यहां पुल बनवाता था। पांच बरस हो गये, तब वह यहां था। वह जाने लगा तो मैंने कहा—मत जा। उसने कहा, मैं बहुत जल्दी, थोड़े ही दिन में लौट आऊंगा। वह आया ही नहीं ···लाहौर तो बहुत दूर है न ?"

मैंने उत्तर दिया—"हां, बहुत दूर है।"

उसकी आंखों में नमी आ गयी। उसने गर्दन झुका कर कहा—"न जाने वह क्यों नहीं आया···न जाने कब आयेगा ? पांच बरस हो गये, आया नहीं।" वह चुप हो गयी।

कुछ देर बाद गर्दन झुकाये ही वह बोली—"उसकी राह देखती रहती हूं, इसीलिये यहां सड़क पर भी आ बैठती हूं। मेरा बहुत सा काम हर्ज होता है लेकिन दिल घबराता है तो यहां आ बैठती हूं। दो और आदमी लाहौर से आये थे पर वह नहीं आया, पांच बरस हो गये।" वह चुप हो गयी।

एक छोटी सी लड़की, प्रायः पांच बरस की ··एक ओर से दौड़ती आयी। मुझ अपरिचित को देख वह सहम गयी। फिर मुझे अलक्ष कर, मां के आंचल में मुंह छिपा वह उसके गले से लिपट गयी।

मैंने पूछा—"यह तुम्हारी लड़की है ?"

सिर झुका कर उसने हामी भरी। लड़की के सिर पर हाथ फेरते हुये उस ने कहा—"यह भी पांच बरस की हो गयी। इसने बाप को अभी तक नहीं देखा। देखे तो पहचान भी न पाये।"

उन दोनों की ओर देखते हुये मन में विचार आया—कवि लोग कहते हैं, विरह प्रेम का जीवन है और मिलन अन्त। क्या यह अपने प्रेम का अन्त कर देना चाहती है ? यों यह प्रेम क्या सदा बना रहेगा ? फिर खयाल आया—यह स्त्री निर्लज्ज है ? क्या इसका प्रेम त्याग और तपस्या का उदाहरण नहीं है ?

पूछा—"कितने पैसे ?"

बोली—"नहीं, पैसे क्या; तुम लाहौर के रहने वाले हो, तुमसे पैसे क्या !" और दोनों हाथों की अंजली से जितनी खुरमानियां रूमाल में आ सकती थीं, उसने भर दीं।

समझ गया औरत पैसे न लेगी। उसकी वह उदास सूरत मन में चुभ सी रही थी। उठ कर जाते भी क्रूरता अनुभव होती थी। असबाब का खच्चर दूर निकल गया होगा, इस खयाल से उठना ही पड़ा। एक अठन्नी निकाल आत्मीयता के भाव से बच्चे के हाथ में देनी चाही। औरत ने इनकार किया परन्तु मेरा भाव समझ कर, उसने बेटी को अनुमति दे दी।

उन्हें छोड़ मैं बस्ती की एक धर्मशाला में जा टिका। कल्पना में वही सड़क के किनारे प्रतीक्षा में बैठी पहाड़िन दिखायी देती रही। मानों वहीं प्रतीक्षा में बैठ-बैठ कर वह अपनी शेष आयु व्यतीत कर देगी।

सुबह धूप निकलने पर घूमने निकला। पैर स्वयं उसी सड़क की ओर चल दिये। चट्टानों की आड़ में मोड़ घूम कर देखा—वह औरत अपने खेतों में निराई कर रही है। आने-जाने वाले की आहट पा एक नजर सड़क पर डाल लेती है। मालूम पड़ता था, उस के व्यथा और श्रम से क्लान्त शरीर को एक मन्द लौ ने जीवित रखा है। यह मन्द लौ परसराम के लौट आने की आशा है।

मुझे देख उस के चेहरे पर एक फीकी-सी मुस्कराहट फिर आई। हाथ की कुदाली एक तरफ डाल कर वह बोली—"क्या लौट रहे हो ?"

उत्तर दिया—"नहीं जरा ऐसे ही घूमने चला आया।"

मैं उस के खेत में चला गया। पूछा—"परसराम यहां कितने दिन रहा था ?"

पहाड़िन ने जवाब दिया—"आठ महीने। कहता था, जल्दी ही लौट आऊंगा। अभी तक नहीं आया; जाने कब आयेगा ! लड़की भी इतनी बड़ी हो गई।"

मैंने पूछा—"तो तुम उस के साथ लाहौर क्यों नहीं चली गई !"

उस ने गाल पर हाथ रखते हुये कहा—"हां, मैं नहीं गई। परसराम ने तो कहा था, तू चल। पर मैं नहीं गई। देखो, मैं कैसे जाती ? यहां का सब कैसे छोड़ जाती ? वह सामने खुरमानियों के पेड़ हैं, वे नाशपातियां हैं, सेब हैं, दो अखरोट हैं। मैं यहां से कभी कहीं नहीं गई। एक दफे जब मैं छोटी थी, मेरी मौसी मुझे अपने गांव, वहां नीचे ले गई थी। उस का घर बहुत दूर है। दस कोस होगा। वहां बहुत वैसा-वैसा है, न यह पहाड़, न यह व्यास नदी की आवाज़, न ऐसे पेड़, रूखा-रूखा मालूम होता है। वहां मुझे बुखार आ गया था। तब मेरा फूफा मुझे पीठ पर लाद कर यहां लाया। आते ही मैं चंगी हो गई। मैं कभी कहीं नहीं गई। लाहौर तो बहुत दूर है, वहां शायद लोग बीमार हो जाते हैं। परसराम के लिये मुझे बहुत डर लगता है। क्या जाने, क्या हाल हो ? हमारे यहां बीमार कभी ही कोई होता है। हो भी जाय तो हर्दू जुलाहा झाड़-फूंक देता है। लाहौर में क्या कोई अच्छा झाड़ने वाला है ?"

मैंने उत्तर दिया—"हां हैं क्यों नहीं, बहुत से हैं।"

सन्तोष से सिर हिला कर उस ने कहा—"अच्छा।"

सकुचाते-सकुचाते मैंने पूछा—"परसराम के आने से पहले तुम्हारा ब्याह नहीं हुआ था ?"

उस ने कहा—"ब्याह तो हुआ था, बहुत पहले। मुझे ब्याह कर यहां से मेरा आदमी तकू ले गया था। वहां मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं बीमार हो गई। वहां मेरी सौत मुझे मारती थी। मैं यहीं लौट आई। मेरा आदमी कभी-कभी यहां आकर रहता था। ब्याह के तीन साल बाद वह गुजर गया। मैं मां के पास ही रही। मैंने परसराम से कहा था—यहां सब कुछ है, तू कहीं मत जा। वह कहता था, मैं जल्दी आ जाऊंगा। पांच बरस हो गये, वह अभी तक नहीं आया। देखो कब आये! अब तो दो बरस से मां भी नहीं है।"

चौथे दिन तीसरे पहर मैं फिर उधर से गुजरा। वह सिर झुकाये अपने खेत में काम कर रही थी। कुछ गुनगुनाती जाती थी। मैं क्षण भर खड़ा देखता रहा। शायद वह विरह का गीत गुनगुना रही थी या पिछले दिनों की याद कर रही थी। उस के ध्यान में विघ्न डालना उचित न समझा, लौट आया।

मण्डी में मैं सप्ताह भर ठहरा। कुल्लू के लिये चलने से पहले मैं उसे फिर एक दफे देखने के लिये गया। वह अपने खेत में अनमनी-सी निराई कर रही थी। उस की लड़की खेत से निकाले हुये घास को दौड़-दौड़ कर बाहर फेंक आती थी।

मैंने कहा—"आज जा रहा हूं।"

उस ने उत्सुकता से पूछा—"लाहौर?"

मैंने कहा—"हां, कुल्लू जा रहा हूं, वहां से लाहौर लौट जाऊंगा।"

बड़ी आजिज़ी से उस ने कहा—"परसराम से मेरा सन्देसा जरूर कहना। कहना, दिन भर सड़क ताका करती हूं; मैं बड़ी इन्तजार में हूं। पांच बरस हो गये, अब जरूर लौट आ। तेरी लड़की तुझे पुकारती रहती है···कहोगे न?"

मैंने कहा—"जरूर कहूंगा।"

अपनी बेटी को प्यार कर वह बोली—"देख, बाबू तेरे बाप के पास जा रहा है। बाबू को सलाम कर। बाबू तेरे बाप को भेज देंगे।"

"अच्छा," कह कर मैं लौट पड़ा और फिर उधर न देख सका। ऐसा जान पड़ता था, मेरी गर्दन की पीठ पर उस की आंखें गड़ी जा रही हैं। मन में एक बेचैनी-सी अनुभव हो रही थी। कह नहीं सकता—परसराम के प्रति क्रोध था··· पहाड़िन के प्रति करुणा थी या परसराम से ईर्ष्या···?

पीर का मज़ार

भारत के नक्शे पर पंजाब के उत्तर-पश्चिम में, जहां लाल रंग समाप्त हो वेरंग प्रदेश आरम्भ हो जाते हैं, वहीं मसूदों के इलाके में भूरे, सूखे, नंगे उत्तुंग, बीहड़ पर्वतों में खेनाज़ैल ग्राम में जहानगुल का घर था। जहानगुल आज संसार में नहीं है परन्तु उसकी यश:कीर्ति की शुभ्र ध्वजा उन भयंकर पर्वत चट्टानों में अब भी स्थायी रूप से खड़ी है और खड़ी रहेगी, जब तक खेनाज़ैल के इलाके में दीन पाक का कदम कायम रहेगा।

जहानगुल कौन था ? क्योंकर वह अपने यश की धवल-ध्वजा अमर कर गया, यही कहने जा रहे हैं। जहान मसूद पठान था और वही करता था जो मसूद पठान करते हैं। कहने को पांच बीघे ज़मीन की खेती और दस-बीस भेड़ों का एक गोल लेकिन दरअसल वही वंश क्रमागत पेशा, मुसाफिरों को लूटना और वंश-शत्रु से बदला लेना।

वह बचपन से ही होनहार था। बाप छोटी उमर में अनाथ कर गया पर इससे क्या ? बाप का साया सिर से क्या हटा, मानो उसकी जवांमर्दी बेटे के सीने में समा गयी। छोटी उमर से ही बाप की तोड़ेदार बन्दूक ले वह लूट की टोली में शामिल होने लगा।

पिता जिस ऊंट को लेकर बन्नू से गज़नी तक भाड़े पर माल ढोता था, उसे बेच कर जब जहान ने 'मार्टिनी-हेनरी' राइफल खरीद ली तो गांव भर समझ गया, दीनगुल का बेटा बाप का नाम रोशन करेगा। मार्टिनी-हेनरी का स्वामी और अचूक लक्ष बेधी बन वह खेनाज़ैल की टोली का मनोनीत नेता बन गया।

जहानगुल की यह सफलता और सम्मान देख उसकी मां की छाती फूल उठती। वह पांच वक्त नमाज़ पढ़ती थी, अब तहज्जुद की नमाज़ और कायदे से पढ़ने लगी। हरदम खुदा से यही दुआ मांगती—या परवर दिगार ! मेरे

इकलौते बेटे को दुश्मनों की नज़र से बचाना। मेरे बुढ़ापे की लकड़ी का बाल बांका न हो।

लोग बुढ़िया के समीप बैठ उसके बेटे की बहादुरी का बखान करते—कैसे अमुक गांव के अफ़रीदी का सिर उसके अचूक निशाने से खरबूजे की तरह उड़ गया। कैसे, बन्नू पुलिस के सिपाही को छुरे के एक ही वार से उसने पार कर दिया। यह सब सुन बुढ़िया का कलेजा बल्लियों उछलने लगता। उसकी झिमझिमी आंखों से उल्लास के आंसू झड़ने लगते। आकाश की ओर अंजुली उठाकर वह एक ही दुआ मांगती—"मेरे बेटे का बन्दूक का निशाना कभी खता न हो। दुश्मन का निशाना हमेशा खता जाय।"

जहान मुसाफ़िरों को लूट कर केवल पाप ही संचय करता हो सो बात नहीं। उसी का साहस था जो आज खेनाजैल की दुरूह, विरूप चट्टानों के ऊपर श्वेत सुन्दर मसजिद नज़र आ रही है। यह मसजिद जहानगुल की कीर्ति का अमर स्तम्भ है। केवल काफिरों को लूट कर ही, बिना किसी की सहायता के उसने इस मसजिद को पूरा किया था। इस मसजिद के लिये उसने क्या नहीं किया; जान पर खेल बन्नू तक धावे मारे। पेशावर से कारीगर लाया। स्वयं जहान मिट्टी के कच्चे मकान में ही रहा परन्तु 'खुदा का घर' चूनागज़ी और पच्चीकारी से चमकने लगा।

परन्तु भगवान तो सदा अपने भक्तों को कष्ट ही देते हैं। जहान बीमार पड़ गया और बीमारी ऐसी कि जिसका सिर-पैर कुछ समझ न आता था। बड़े-बड़े हकीम आये। तसखीसें हुईं। जुलाब पर जुलाब दिये गये पर कुछ न बना। वही खूब ज़ोर से जाड़ा लग कर बुखार चढ़ आता। हकीमों ने बताया जहान के बदन में दो जिन्नों ने घर कर लिया है। एक है सर्द जिन्न और दूसरा है गर्म जिन्न। एक सर्दी लगाता है तो दूसरा बदन को गर्म कर देता है। अगर सर्द जिन्न को भगाने के लिये बदन को गर्मी दी जाती है तो गरम जिन्न ताकत पकड़ता है और अगर सर्दी पहुंचा कर गर्म जिन्न को दबाया जाता है तो सर्द जिन्न ज़ोर पकड़ता है।

एक आलिम हकीम ने बर्फ़ के समान सफ़ेद दाढ़ी पर हाथ फेर कर बहुत धीमी आवाज़ में कहा, जिससे बीमार न सुन सके—"जब दो जिन्न बदन में दखल कर लेते हैं, बीमार का बचना नामुमकिन हो जाता है। इस वक्त अगर तीसरा जिन्न उन दोनों को मार कर भगा सके, तभी कुछ उम्मीद हो सकती है। बाकी पीर की दुआ से सब कुछ है।"

हकीम साहब ने फर्माया, उन के गांव में जो बेरी वाले पीर हैं अगर उन की मनौती कर, बन्नू के फिरंगी हस्पताल की कड़वी दवा दी जाय तो फायदे की पूरी उम्मीद हो सकती है। हकीम साहब ने किस्सा कह कर बताया—बेरी वाले पीर जब ज़ियारत के लिये अजमेर शरीफ गये थे, फिरंगियों ने उन की बहुत खिदमत की थी। तभी से पीर सैयद ने फिरंगियों के कड़वे पानी को दुआ दे दी—जो पियेगा दो जिन्न की बीमारी में शफा पायेगा लेकिन हर हालत में तावीज़ का बाजू पर बंधा रहना जरूरी है।

बेटे की बांह पर तावीज़ बांध, जहानगुल की मां गिरती-पड़ती चट्टानों पर रेंग-रेंग कर बेरी वाले पीर की दरगाह पर जा, सूखी बेरी की टहनी में बंधी असंख्य गांठों में एक और मनौती की गांठ बांध आई और फिर बन्नू के फिरंगी हस्पताल से कड़वा पानी लाकर बेटे को पिलाया।

बेरी वाले की दुआ से जहानगुल के बदन के भीतर के दोनों जिन्न घबराने लगे। लोगों ने समझ लिया, जिन्न भाग गये। जिन्न तो भाग गये परन्तु जाते-जाते जहान को ऐसा धक्का दे गये कि उस का सिर हरदम घुन्नाने लगा और कानों में सांय-सांय होने लगी। अनुभवी लोगों ने समझाया, इस का इलाज यही है कि जहान बेरी वाले पीर की ज़ियारत करे। शरीर में कुछ शक्ति आते ही जहान पीठ पर मार्टिन-हेनरी लटका, चार साथियों सहित ज़ियारत के लिये चल दिया।

किस श्रद्धा से जहानगुल ज़ियारत के लिये चला था ? परन्तु कानाखैल में जा उस का जो अपमान हुआ, उस से उस का सम्पूर्ण रक्त जल गया। कुछ वर्ष हुये ईद के मौके पर कानाखैल के किसी व्यक्ति के नमाज़ पढ़ने खेनाज़ैल मसजिद में जाने पर, खेनाज़ैल के किसी अभद्र व्यक्ति ने ताना मारा था—"इतना बड़ा गांव का नाम और एक मसजिद तक नहीं बना सकते !" उस ताने के बदले में जहान को यह अपमान सहना पड़ा।

कानाखैल पहुंचने पर उस से कहा—"शरम नहीं आती ? अपनी मसजिद में जाओ ! खबरदार, अगर हमारे पीर की दरगाह पर कदम रखा !"

जहान की आंखों में खून चढ़ गया। तबीयत में आया प्यारी मार्टिनी के सुन्दर मुख से इस अपमान का उत्तर तुरन्त दे। समझदार आदमी था, सोच कर रह गया। जानता था, पराई सीमा में लड़ाई मोल लेकर उस की बोटी भी घर न पहुंचेगी।

गरज कर उस ने कहा—"पीर की दरगाह का इतना अभिमान ! जो तुम्हारे

पीर की तरफ मुंह करे, उस पर लानत ! सौ लानत ! उस पर शरम !"

जहान कानाखैल से लौट पड़ा परन्तु खेनाज़ैल न आकर वह बंगाज़ई की ओर गया। बंगाजई के सैयद वंश की बड़ी मानता है। यह वंश खुद 'रसूले अल्लाह वल्लेसलम' के नज़दीकी खानदानों में से है। इस वंश के अमीनशाह बड़े पहुंचे हुये पीर थे। बंगाज़ई पहुंच जहान पीरशाह के हुजूर में हाजिर हुआ और उन से अत्यन्त अनुग्रह पूर्वक खेनाज़ैल की भूमि को चरण स्पर्श से पवित्र करने की प्रार्थना की और उन्हें साथ ले खेनाज़ैल पहुंचा।

खेनाज़ैल में पीर सैयद के आगत-स्वागत की सीमा न थी। मौलूद हुये, उर्स भी हुये। पास-पड़ोस के बीसियों गांवों से लोग ज़ियारत के लिये आये। कई रोज़ तक हलवे, मांडे, गोश्त-नान से जहान ने पीर साहब की तवाजह की। पीर साहब के लौटने का दिन आया। लोगों ने भेंटें चढ़ाईं। पीर साहब ने दुआएं दीं।

जहान श्रद्धा-भक्ति से पीर साहब को घोड़े पर सवार करा वापिस करने चला। गांव से आधा मील आकर उस ने पीर साहब से विदा ली। पीर सैयद अपनी भेंट के बोझ को लाद आगे बढ़े। जहान एक चट्टान पर बैठ प्रतीक्षा करने लगा।

पीर सैयद ने ज्यों ही जहान के गांव की सीमा से बाहर कदम रखा, जहान ने आसमान की तरफ देख कर कहा—"या अल्लाह, बख्श !" और अपनी मार्टिन-हेनरी को उठा कंधे के बराबर सीधा किया। पल भर में आस-पास की पहाड़ियां बन्दूक के गर्जन से गूंज उठीं और पीर सैयद औंधे मुंह ज़मीन पर लोट गये।

बड़े यत्न और आदर से जहान पीर साहिब की लाश को उठा लाया। तमाम भेंटें गरीबों को खैरात कर दीं और एक ऊंची पहाड़ी पर, बेरियों की छाया में, पीर सैयद की शानदार कब्र बना दी गई। दिन रात दिया जलने लगा।

तब सुस्थ होकर जहानगुल ने कहा—"अब दुनिया देखेगी, कानाखैल के पीर की मानता बड़ी है या खेनाज़ैल के पीर की ? और शरम है उस पर जो खेनाज़ैल से कानाखैल जाय ! और लानत है खेनाज़ैल वालों पर अगर कानाखैल वालों को अपनी दरगाह पर आने दे।"

खेनाज़ैल वालों ने कलाम पाक की कसम खाकर कहा—वे जान दे देंगे पर अपने नेता की शुभ्र कीर्ति पर धब्बा न लगने देंगे।

दुखी-दुखी !

लाहौर के तिब्बी बाजार, बनारस की दालमण्डी और दिल्ली के चावड़ी बाजार में से गुजरते समय शरम से तुम्हारा सिर झुक जाता है, तुम घृणा से नाक सिकोड़ लेते हो। मैं ऐसा नहीं करता क्यों ? सुनो :

तुम मानोगे नहीं लेकिन सच कहता हूं, मुंह में अनाज का दाना डाले पूरे चार रोज़ हो गये थे। कदम-कदम पर पैर लड़खड़ाते थे और आंखों के सामने अंधेरा छा जाता था। पहले तो सिर घूमने लगा और फिर मानो दरद से फटने-सा लगा। दिल में तिलमिलाहट होने लगी, बड़े जोर से उबकाई आती थी जैसे कै हो जायगी पर पेट में रखा क्या था ? केवल पानी। पेट की ज्वाला को बुझाने के लिये कभी इस प्याऊ से और कभी उस प्याऊ से पानी लेता था, वही निकल जाता। गलियों में दोनों हाथों से सिर थाम-थाम कर मैं नालियों के किनारे कै करने बैठ जाता। कोई टोक देता, क्या हुआ रे ! नाजुक मिज़ाज रूमाल मुंह पर रख, एक ओर थूक चले जाते।

पहली रात तो स्टेशान के सामने जो बाग है, क्या कहते हैं उसे; हां विक्टोरिया गार्डन, वहीं एक बेंच पर लेट कर गुजार दी। दूसरी रात जमुना किनारे बांध पर जा लेटा। तीसरी रात मन बहुत ही बेचैन था। पैरों में चलने की शक्ति न थी। सिर में दरद अधिक था। उस समय न जाने क्या ढूंढ़ता, खोजता, किस अन्धी आशा में, किस प्रयोजन से जामा मसजिद के समीप से चला जा रहा था। उस समय परेड में सड़क के किनारे की पटरी पर कुछ आदमी लेटने की जगह ठीक कर रहे थे। जगह की किसी प्रकार की कमी न रहने पर भी जगह के लिये झगड़ा चल रहा था। एक फकीर इकतारा बजा कर कुछ गा रहा था। वहां पहुंच कर मुझे अनुभव हुआ मानो एक ठिकाने पहुंच गया हूं। पहिले दो दिन की तरह लज्जा के कारण एकान्त ढूंढ़ने की

इच्छा न हुई। उन्हीं लोगों की संगत में मैं भी एक ओर लेट गया। ओफ़! इन्सान क्यों और कैसे बदल जाता है?

सोचने लगा, अब क्या होगा? घर वालों को खबर कैसे होगी लेकिन इस बात को तो मैं तीन दिन और दो रात से सोच रहा था। सोचते-सोचते थक गया तो समीप लेटे हुये आदमियों की बातचीत सुनने लगा।

चौथे दिन सोचा, मिथ्या लज्जा में क्या रखा है? जैसे सैकड़ों आदमी हाथ पसार कर मांग लेते हैं, उसी तरह मैं भी मांग लूंगा। जब मेरा सब कुछ भाग्य ने छीन लिया तो भाग्य की ही इच्छा पूरी हो परन्तु किसी भद्र पुरुष के समीप पहुंचने पर जिह्वा जड़ हो जाती। सोचने लगता—क्या यह मेरी बात सुनेगा?

बचपन से मां के अतिरिक्त कभी किसी से कुछ मांगा नहीं। मां ने सदा यही सिखाया था—बेटा, कभी कोई कुछ दे तो भी नहीं लेना। उस समय मालूम हुआ, यह केवल भरे पेट का अभिमान था।

स्टेशन के समीप बार-बार जाता। जान पड़ता था, स्टेशन मेरे घर का दरवाज़ा है जो पैसे की चाबी से खुल सकता है परन्तु वह चाबी मेरे पास थी नहीं—खो गयी। इसी से मैं बेघरबार था—निराश्रय था।

स्टेशन से फ़तेहपुरी पहुंचा। फ़तेहपुरी में सांझ को कैसी भीड़ होती है सो जानते ही हो। जन-प्रवाह में बह रहा था। न जाने कौन प्रेरणा, कौन शक्ति दिन भर में कई दफे मुझे पूरी-पराठे की दूकानों के सामने ले जाती। अनेक बार सतृष्ण नेत्रों से मैं उन पदार्थों को देखता, भीषण परिमाण में उन्हें निगल जाने की इच्छा होती। यहां तक कि सड़क पर बैठे कबाब फ़रोश के सामान को, जिसके समीप से गुजरते समय नाक पर रूमाल रख लेना पड़ता है, मैं लोलुप दृष्टि से देखने लगता। हलवाई की दूकान पर से पूरी खाकर जो लोग पत्ते फेंक देते थे, उनमें भोजन पदार्थ का कुछ अंश देख हाथ उस ओर जाना चाहते परन्तु अभी शरीर पर कपड़े बाकी थे। उनका खयाल ही हाथों को रोक देता था—आत्मा का अभिमान उड़ गया था लेकिन कपड़ों का अभी बाकी था।

भूख बुरी चीज़ है। उसके ज़ोर हाथी और शेर भी सूत आते हैं; मनुष्य की क्या बिसात! एक गली में देखा, एक धर्म प्राण हिन्दू नारी सांड़ को रोटी खिला रही थी। आंसू आ गये। दांतों से ओंठ काट, बड़ी मुश्किल से उन्हें रोका।

कह रहा हूं, बिना किसी प्रयोजन के जिस ओर पैर उठते, उसी ओर दीवारों का सहारा ले-ले कर चला जा रहा था। आ पहुंचा हौज काजी! होश-

हवास दुरुस्त रहते जहां आकर गर्दन झुका कर तुरन्त भाग जाना चाहिये, वहीं बहुत आहिस्ता-आहिस्ता इधर-उधर देखता टहल रहा था। संकोच क्या होता ? एक तरह से ज्ञान-शून्य, अनुभूति-शून्य, संज्ञा-शून्य हो रहा था। रोशन थियेटर से अजमेरी दरवाज़े की ओर जो जगह है, जहां नीची वेरौनक दुकानें हैं और ऊपर अंधेरी कोठरियों में टूटी हुई चिकों की आड़ में गरीब रंडियां रहती हैं, वहीं मैं टहलने लगा।

जैसे डाक्टर, वकील और दुकानदारों में छोटे-बड़े का दर्जा है, वैसे ही रंडियों में भी है। एक रंडियां रहती हैं चावड़ी में, जहां अट्टालिकाओं पर फूलों के गजरे लटके रहते हैं। रंगीन कांच के मनकों के पर्दों के पीछे बिजली से चकाचौंध, झाड़-फानूस लदी छतें दिखायी देती हैं। बाज़ार खस और हिना की गन्ध से भरा रहता है। ऊपर से नूपुरों की झनकार, तबला, वेला और सारंगी की सुर-लहरी के बीच हंसी का कोलाहल सुनायी पड़ता रहता है।

दूसरी रंडियां हैं रोशन थियेटर से नीचे की ओर। प्रायः धुंधली लालटेन, गिरी दीवार के छज्जे के कमरे से लटकी रहती है। उसके साथ ही जैसे रोशनी पर आये पतंगों को निगलने के लिये छिपकली ताक लगाये बैठी रहती है, वैसे ही मुंह पर सफ़ेद रंग पोते रंडियां ग्राहकों की बाट जोहा करती हैं। कहीं-कहीं मिट्टी के तेल की ढिबरी धुआं उगलती दिखायी देती है और उसके समीप एक भूखा-सा हताश मुंह प्रतीक्षा में आंखें फैलाये दिखायी देता है।

मैं कभी कदम-कदम चलने लगता और कभी गिरते शरीर को संभालने के लिये कमर पर हाथ रख ऊपर-नीचे, इधर-उधर देखने लगता। मुझे जान पड़ा, ऊपर संकेत से मुझे कोई बुला रहा है। फिर ऊपर देखा, मिट्टी के तेल की ढिबरी के समीप बैठने वाली कुछ रंडियां आमने-सामने से मुझे पुकार रही थीं। चार दिन में उस समय मुझे पहिली दफ़े किसी ने अपने समीप आने के लिये कहा था। विमूढ़ता की अवस्था में जो दायीं ओर सबसे समीप थी, उसी की ओर देख कर मैंने पूछा—"क्या है ?"

उतावली में उसने जवाब दिया—"जो चाहे दे देना।"

'देना' शब्द सुन कर मेरा उत्साह भंग हो गया परन्तु उसका उत्साह नहीं टूटा। उसने मानों बिलख कर कहा—"अरे खुदा के वास्ते आ जाओ, आ जाओ !"

मैं समझता हूं, चार दिन निरन्तर भूखा रहने से मनुष्य में विवेक और व्यक्तित्व नहीं रह जाता। मशीन की तरह उसके हुकुम से मैं जीने पर चढ़ने

लगा। जीने पर पैर लरज रहे थे। दोनों ओर की दीवारों का सहारा ले ऊपर चढ़ रहा था। उस समय भी यह खयाल न आया, मैं ऊपर क्यों जा रहा हूं ?

उसने कंघी-पट्टी कर बाल ज़रूर बांधे हुये थे परन्तु उसके शेष कपड़ों को देख उसे मैंने किले के सामने परेड में सोने वाले जीवों से भिन्न नहीं समझा। ऊपर कच्ची कोठरी में एक चटाई बिछी थी और मिट्टी का एक बदना रखा था। प्रश्नात्मक दृष्टि से मैंने उसकी ओर देखा। उसने गिड़गिड़ा कर उत्तर दिया—

"तुम जो चाहो, अल्लाह के नाम पर दे देना। मैं मरी जा रही हूं। आज चार रोज़ मुझे यहां आये हो गये हैं। अल्लाह की कसम, एक दाना मुंह में नहीं गया।"

न जाने क्यों, मैंने पूछ लिया—"यहां कैसे आयी ?"

उसका दुख उबल पड़ा। रोकर उसने बताया, उसका मालिक उसे मार-पीट कर दूसरी लुगाई को ले कहीं चला गया है। जब तीन दिन भूखी घर में बैठी रोती रही तो एक 'मामा' उसे ढाढ़स बंधा कर यहां बैठा गयी। पैसा आने पर आधा-आधा बांट लेने की बात थी पर किस्मत, एक भी आदमी नहीं आया। भूख के मारे जान निकली जा रही थी। मामा आयी थी। मिट्टी के तेल की डिबिया जला गयी, ढाढ़स बंधा गयी कि आदमी आयेंगे।

वह जो अपने शरीर का सौदा करने बैठी थी, न जाने क्यों मुझे उसके प्रति ज़रा भी ग्लानि न हुई। कह नहीं सकता, मेरा विवेक मर गया था या स्वयं मेरे अपने पेट की आग उसकी ओर से सफाई दे रही थी। उस समय एक रोटी के लिये मैं क्या कुछ करने को तैयार न हो जाता, यह आज नहीं कह सकता।

अपने ही जैसे दूसरे व्यक्ति को पा, अपना दुःख मैंने भी कह सुनाया—कुछ खाये चार रोज़ मुझे भी हो गये हैं। जालन्धर में मकान है, इम्तिहान पास कर कलकत्ते में चाचा के पास नौकरी करने जा रहा था। एक दिन के लिये दिल्ली देखने को ठहर गया। घर के लोगों ने समझाया था, दिल्ली में जेबकट बहुत हैं इसलिये सब सामान, रुपया और कलकत्ते का टिकट सन्दूक में रख सराय की कोठरी में ताला लगा, बाज़ार से खाना खाने भर के पैसे लेकर गया था। तीन घण्टे बाद घूम-फिर कर लौटा तो कोठरी सपाट खाली पड़ी थी। घबरा गया। कोई अपना है नहीं, बैठने का ठांव नहीं·····।

सूखी निराश दृष्टि से मेरी ओर देख उसने कहा—"तो फिर तू यहां क्यों आया ?" और वह रो पड़ी।

जीना उतरना चढ़ने से कहीं अधिक कठिन जान पड़ा। एक सीढ़ी पर सांस लेने को बैठा था, उस समय खयाल आया दुखी दुखी को क्या सहायता दे सकता है ?

नीचे उतरा ही था कि एक सिपाही ने डांट कर पूछा—"क्यों बे क्या हो रहा है ?" चुप रह गया, क्या जवाब दे सकता था ?

"क्यों बन रहा है बे ?" सिपाही ने कहा। मैं फिर भी कुछ न कह सका। डांट कर उसने कहा, "चल थाने में, १०९ में चालान होगा।"

१०९ और ११० क्या होता है, नहीं जानता था। खैर थाने जाना ही पड़ा। थाने न जाता तो शायद कभी घर न पहुंच पाता।

लम्बोदर थानेदार की भीषण मूर्ति देखते ही सुध कुछ ठिकाने आ गयी।

कांपते-कांपते बोला—"Sir, I am innocent." (हुजूर, मैं बेकसूर हूं)।

अंग्रेज़ी के इस वाक्य से सब काम बन गया। घर तार दिया गया और सब काम हो गया परन्तु वह संध्या···!

इसी से अब उन बाज़ारों से आते-जाते मुझे घृणा और लज्जा अनुभव नहीं होती।

भावुक

परीख के जीवन की महत्वाकांक्षा अभी कल्पना में ही परिमित है। कालिज की पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात बिना दुविधा के उसे बैंक में नौकरी मिल गयी। समय आने पर वह अकाउन्टेंट, बैंक सेक्रेटरी या मैनेजर बन जायेगा, इसमें किसी को सन्देह नहीं।

पग-पग पर पेट की चिन्ता न रहने के कारण उसके स्वभाव और व्यवहार में कमीनेपन के लिये गुंजाइश नहीं। जीवन में पूर्णता की ओर उसका लक्ष है। स्वभाव में कुछ उच्छृङ्खलता, कुछ भावुकता का मिश्रण होने से उसका व्यवहार इस ढंग का है कि पुरुष सहयोगियों में विशेष समादर न पाकर भी स्त्री-समाज में वह सहानुभूति पाता है। स्त्रियों के पीछे दौड़ने वालों में उसकी गिनती नहीं परन्तु उसका हृदय-मंदिर 'प्रतिमा' से शून्य न था।

मन में प्रतिमा की आराधना करने पर भी उसके मुंह पर ताला था। कुछ परिस्थिति भी ऐसी ही थी। भले आदमियों के जिस मुहल्ले में मकान का हिस्सा ले वह अकेला नौकर के साथ रहता था, उसी मुहल्ले के एक अभिजात और अति सुसंस्कृत परिवार में उसे जब-तब आने-जाने का मौका रहता। इसी परिवार की एक कुमारी के प्रति हृदय को अंजली में ले उसने अर्पण कर दिया।

परीख के मन में सभी सद्गुणों की अपेक्षा 'वफ़ादार' के प्रति विशेष श्रद्धा है। यहां तक कि कुत्तों को वह निकटतम सम्बन्धी की अपेक्षा भी अधिक प्यार की नज़र से देखता है। उसके पास कोई कुत्ता न था। जीवन की यह न्यूनता उसके मन में खटकती रहती। सलीके (Fashion) से रहने के लिये भी कुत्ता एक आवश्यक चीज़ है।

संध्या समय वह कदम-कदम मकान लौट रहा था। मुख्य सड़क के बंगले से एक पिल्ला उसके पीछे हो लिया। पिल्ले का वह गदबदा, घुंघराले बालों में लिपटा, ऊन के बंडल-सा शरीर और छोटी-छोटी टांगों से उसका पीछे दौड़ते चला आना देख उसका मन उमंग-उमंग कर रह जाता।

परीख सड़क से गली में पहुंचा। आधी गली पार कर भी जब पिल्ले की वफ़ादारी कम न हुई तो उसकी अवहेलना करना परीख के लिये सम्भव न रहा। उसने उसे गोद में उठा लिया और जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा वह मकान पर आ पहुंचा।

पिल्ला बहुत ही कमसिन था। शायद वह स्वयं पानी या दूध न पी सके इसलिये परीख ने उसे रुई की बत्ती बना दूध पिलाना शुरू किया परन्तु पिल्ले को स्वयं दूध पीते देख उसके मन की कली खिल गयी, सम्भवतः वैसे ही जैसे नवजात शिशु को स्तन-पान करा माता का हृदय सन्तुष्ट हो जाता है।

बच्चों के सम्पर्क में जवान और बूढ़े भी बच्चे बन जाते हैं। एकान्त में तोतले बच्चे को गोद में ले महाविद्वान् और विलक्षण भी कैसे मुंह बना-बना नितान्त प्राकृतिक भाषा में, जिसे किसी दूसरे हमसखुन के लिये समझना दुश्वार है, तुतलाने लगते हैं! उस समय हम शायद शिशु को उसी की भाषा में बोल कर समझा देना चाहते हैं। पानी को 'मम', दूध को 'दुदू' और 'रोटी खाओ' को 'लोती काओ' कहने लगते हैं। आंखें चमकने लगती हैं, होंठ आगे बढ़ जाते हैं और नाक उन्मेष में फूल जाती है।

यह सब लीला परीख अपने एकान्त कमरे में 'मल्ली' (पिल्ले) के साथ करता था। अपने हाथ से उसे दूध पिलाता, सेंट लगा देता और मकान पर अधिकांश समय उसे गोद में लिये रहता। बैंक जाते समय नौकर को मल्ली के विषय में सब बात बारीकी से समझा देने पर भी बैंक के काम-काज के बीच उसका ध्यान अनेक बेर मल्ली की ओर खिंच जाता।

हृदय की 'प्रतिमा' के अतिरिक्त उसे किसी की चिन्ता थी तो मल्ली की। प्रतिमा संकोच से घिरी एक महत्वाकांक्षा थी। उसका क्षेत्र था कल्पना परन्तु मल्ली थी प्रत्यक्ष और स्थूल सत्य जो परीख के मन पर अधिकार कर बैठी। वह प्रतिमा के विषय में मुंह न खोल सकता था। क्या किसी के लिये उस प्रेम की महत्ता और सूक्ष्मता को समझ सकना सम्भव था?

दो सप्ताह से, जब से मल्ली आयी, परीख के मन में उधेड़बुन बनी रही कि किस प्रकार बिना सन्देह का कारण पैदा किये वह उस सभ्य, नवसंस्कृत

परिवार में जाकर प्रतिमा का दर्शन कर आ सके। वह मल्ली से उलझा रहा। कहते हैं, जिन बच्चों का अधिक यत्न से पालन होता है, वही अधिक बीमार रहते हैं। मल्ली भी बीमार हो गयी। उसकी दौड़-धूप बन्द हो गयी। दूध पीना उसने छोड़ दिया। डाक्टर के यहां से अपने लिये हाज़मे की दवाई लाकर उसने मल्ली को खिलायी पर कुछ न बना।

मल्ली का दुख देख, संकोच छोड़ परीख सब कुछ करने को तैयार हो गया। डाक्टर से राय लेने पशु-चिकित्सालय तक गया। शनिवार को वह एक बजे ही बैंक से लौट आया। मल्ली की हालत खराब थी। एक छोटी-सी टोकरी में उसे ले वह फिर हस्पताल गया। डाक्टर ने उपेक्षा से देख कर कहा—"यह कुतिया बचेगी नहीं।" परीख के मानो हृदय पर दीवार गिर गयी। मन के आवेग को दबा उसने डाक्टर से पूछा, "फिर ?"

डाक्टर ने उसके मन की करुणा का आभास पाकर सलाह दी—"इसे बहुत ज्यादा तकलीफ़ हो रही है। आप चाहें तो क्लोरोफार्म दे दिया जाये, तकलीफ़ से बच जायेगी।"

कुछ देर करुण आंखों से बिलखती हुई मल्ली की ओर देख एक गहरा सांस खींच उसने कहा—"अच्छा।"

परीख के देखते-देखते मेहतर ने एक तार की प्याली में रुई रख, उस पर दवाई छोड़ मल्ली के मुंह पर प्याली को दबा दिया। मल्ली दम घुटने से कुछ छटपटाई पर कुछ ही क्षण में वह निश्चल हो गयी। उसकी पीड़ा समाप्त हो गयी। मेहतर ने मल्ली को पूंछ से उठा एक ओर फेंक दिया। परीख के चेहरे की त्वचा से मानों ज्वाला सी निकल रही थी। फीस का एक रुपया डाक्टर की मेज़ पर फेंक वह बाइसिकल पर लौट पड़ा।

ज्यों-त्यों ओंठ दबाये वह मकान तक पहुंचा। साईकिल बरामदे में फेंक वह भीतर कुर्सी पर बैठा ही था कि नौकर ने एक तार का लिफ़ाफ़ा उसके हाथ में ला कर दिया।

तार छोटे भाई का था। उसने परीक्षा में पास होने की खुशखबरी भेजी थी। परीख के आहत हृदय पर इस समाचार का कुछ भी असर न पड़ा। वह मुंह ढांप कर कुर्सी पर पड़ा रहा।

मेज़ पर चाय रख कमरे का पर्दा उठा, उसे बुलाने के लिये नारायण ने भीतर झांका लेकिन आंखों पर रूमाल रखे उसे चुपचाप पड़े देख बिना आहट किये वह लौट गया।

गिरधारीलाल बाबू मुहल्ले के नारद थे। दफ्तर से लौट प्रायः वे परीख के समीप बैठ सटक से खमीरा सटका करते। नारायण से उन्होंने पूछा—"बाबू कहां हैं ?" नारायण समझदार नौकर था। उसने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया, "भीतर बैठे हैं, तबीयत कुछ खराब है।"

तबीयत की खराबी का कारण पूछने पर उसने बहुत धीमे स्वर में बताया—"बहुत दिन से बुआ जी की तबियत खराब थी···आज अभी तार आया है। तभी से···बुआ जी इन्हें बहुत मानती थीं।"

"हूं" कहकर गिरधारीलाल बाबू ने परदा हटा कर देखा, परीख अब भी आंखों पर रूमाल रखे पड़ा था। गिरधारीलाल भी पीछे हट आये।

ऐसी नाजुक हालत में अकेले भीतर जाने की अपेक्षा दो-चार इष्ट-मित्रों को साथ लेकर सांत्वना बंधाने जाना ही उचित था। सामने वाले मकान में इस समय लाला अर्जुनलाल नृत्य-संगीत का अभ्यास किया करते थे। दुर्घटना की खबर पा उन्होंने बाजा बन्द कर दिया और नीचे आ गये।

पन्द्रह-बीस मिनट में तीन-चार सज्जनों ने दबे पांव परीख के कमरे में प्रवेश किया और चुपचाप बैठ गये। लाला श्रीराम वयोवृद्ध थे, उन्होंने खांस कर गम्भीर स्वर में कहा—"बेटा परीख !"

परीख ने आंख पर से रूमाल हटा कर देखा। सहसा इतने आदमियों के चुपचाप आकर बैठ जाने से वह सहम सा गया। आंखें पोंछ लेने पर भी उनमें आर्द्रता और लाली बाकी थी।

लाला श्रीराम ने पूछा—"बुआजी को कितने दिन से तकलीफ थी ? उनकी आयु भी काफी होगी ? इस तरह दिल छोटा करना ठीक नहीं। तुम तो खुद समझदार हो, संसार की गति तो तुम जानते हो, ऐसी ही है।"

बाबू गिरधारीलाल ने पूछा—"बुआजी को क्या तकलीफ थी ?"

परीख के लिये कुछ कहना कठिन था। उसका गला रुंध रहा था। वह कुछ समझ न सका। अर्जुनलाल ने पूछा—"बैंक से लौट कर ही तो आपको तार मिला है न ! दो बजे मुझे नारायण गली में मिला था, उस वक्त तक तो कोई खबर नहीं आयी थी।"

परीख की समझ में समस्या आ गयी, उसके मुख पर दोहरी मोहर लग गयी। इन भले आदमियों के सम्मुख भेद को खोल कर रख देने की उसकी हिम्मत कैसे हो सकती थी ? अपने हृदय के क्षोभ का कारण वह किस प्रकार प्रकट कर सकता था ? एक पिल्ले के लिये एक ज़िम्मेदार, सुशिक्षित व्यक्ति का

रोना क्या विश्वास कर लेने लायक बात है ?

परीख हथेली पर ठोड़ी रखे चुप बैठा रहा। उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। अपने दुख से और लोगों की गलतफहमी की चोट से उसका मन और भी व्याकुल होने लगा। इन भद्र पुरुषों का यह भ्रम उसे एक प्रकार का अत्याचार मालूम हो रहा था। मानों उसे लज्जित करने के लिये ही सबने मिल कर एक प्रकार का षड़यन्त्र रच डाला हो।

प्राय: पैंतालीस मिनट तक उसे भरपूर आश्वासन दे भद्र पुरुष विदा हो गये। परीख इन लोगों से छुटकारा पाने की तसल्ली में सांस भी लेने नहीं पाया था कि प्रतिमा का भाई आ पहुंचा। फिर वही सांत्वना, समवेदना के निश्चित, परम्परागत शब्द उसके कानों में गये और उसकी ग्लानि को कुरेदने लगे।

प्रभात के उठकर जाते ही परीख ने सोचा, न जाने अभी कितने और भले आदमी आकर तमाशा करेंगे। कल रविवार की छुट्टी है ही, इस झगड़े से पिण्ड छुड़ाने के लिये क्यों न एक दिन के लिये वह जालन्धर चला जाये ?

नारायण को बुलाकर उसने तुरन्त टांगा लाने के लिये कहा और एक सूटकेस में ज़रूरी कपड़े डाल कर तैयार हो गया।

एक्सप्रेस तेज़ी से चली जा रही थी। ठण्डी हवा के झोंकों और गाड़ी की तीव्र गति ने उसके क्षुब्ध हृदय को अपनी गोद में झुला-झुला कर उसके मन के बोझ को बहुत कुछ हल्का कर दिया।

अब दूसरी उलझन उसे व्याकुल करने लगी। वह यों एकाएक केवल एक दिन के लिये घर दौड़ आने का क्या माकूल कारण बता सकेगा ? बुआ की बहुत याद आयी थी, कह देने से निस्सन्देह उनका मन अभिमान से गद्‌गद् हो सकेगा। छोटे भाई को पास होने की बधाई देने आने की बात अलबत्ता मौजूं थी लेकिन वह था रुड़की में। खैर, कुछ कह दिया जायेगा। अब लौट चलने की गुंजाइश न थी।

परीख दोपहर का खाना खाने के बाद बरामदे में बैठा पिता जी से बैंक में अपने सुअवसरों और कठिनाइयों की आलोचना कर रहा था। तार का चपरासी आया और परीख के नाम एक तार देकर लौट गया।

पिता जी ने कहा—"क्या है, देखो तो अर्जेण्ट तार है !"

परीख ने लिफाफा फाड़कर देखा, तार में लिखा था—"हार्दिक शोक और

समवेदना, परमात्मा मृतात्मा की शांति, सम्बन्धियों को सांत्वना प्रदान करे।' नीचे हस्ताक्षर थे प्रतिमा के। उस शोक में भी आदर के उस पात्र से समवेदना पा उसका हृदय उमड़ उठा। परीख के होठों पर मुस्कराहट फिर गई देख कर पिता ने पूछा—"क्या खुशखबरी है ?" परीख ने जल्दी में कोई उत्तर न पाकर कहा, "एक मित्र ने पास होने की खुशख़बरी दी है।"

पिता ने पूछा—"क्या वह भी रुड़की में पढ़ता है ?" परीख ने कहा, "नहीं दिल्ली सैक्रेटेरियट में नौकरी के लिये कम्टीटिशन में गया था।"

सोमवार को बैंक में हाजिर होने के लिए रात की ट्रेन से लौटना जरूरी था। फुर्सत में उसने सोचकर एक बयान तैयार कर लिया। वह जानता था, लाहौर लौटने पर सभी परिचित भद्र पुरुष बुआजी के लिये शोक प्रकट करने के लिये उसे घेर लेंगे। बैंक में भी लोगों की हमदर्दी के उत्तर में उसे कुछ कहना ही होगा।

टांगे पर गली में से प्रतिमा के मकान के सामने से गुजरते हुए उसे जान पड़ा, खिड़की में से प्रतिमा ने उसे देख लिया है। घर पहुंच बैंक के लिये कपड़े बदल वह बैठा ही था, नारायण ने खबर दी—"प्रभात बाबू की बहिन जी आई हैं।"

परीख बाहर निकल आया। प्रतिमा के चेहरे पर समवेदना की छाप बहुत गहरी और स्पष्ट दिखाई दे रही थी। परीख द्वारा पेश की गई कुर्सी पर बैठ कर प्रतिमा ने पूछा—"क्या बुआजी की तबियत बहुत दिन से खराब थी ?"

परीख ने तुरन्त उत्तर दिया—"हां थी तो परन्तु मुझे कुछ मालूम न था। उन के यहां से वर्षों से कोई पत्र भी नहीं आया था। वे रिश्ते में बुआजी की बहन लगती थीं। बचपन में मैं उनकी गोद में खेला था, वे मुझे बहुत मानती थीं, उनके अपना कोई था भी नहीं।"

दूर के सम्बन्ध की बात जानकर प्रतिमा के चेहरे की गम्भीरता में बहुत कुछ फरक पड़ गया। प्रशंसा के तौर पर उसने कहा—"वे बेचारी आपकी दूर की सम्बन्धी थी, तिस पर भी आपने उनके लिए इतना अनुभव किया। आप बहुत ही करुण स्वभाव और भावुक हैं। जितनी बेपरवाही आप व्यवहार में प्रकट करते हैं दरअसल वह आपकी आर्द्रता का वाह्य आवरण है।" बात कहकर प्रतिमा के ओठों पर झीनी-सी मुस्कराहट फिर गई।

'भावुकता' के प्रसंग ने परीख के हृदय में अपने दुख के वास्तविक कारण की स्मृति को ताज़ा कर दिया। एक दफे उसे अनुभव हुआ—वास्तविक कारण

को छिपाने की कुछ भी आवश्यकता न थी—कम से कम प्रतिमा के सम्मुख तो वह लज्जा का विषय न होकर महत्ता का ही कारण होता। भेद को यथातथ्य रूप में प्रकट कर वह हृदय-वंद्या रमणी की दृष्टि में न जाने कितना ऊंचा स्थान पा सकता था! वह इसी विचार में डूब गया।

परीख को दुविधा में देख प्रतिमा ने कहा—"भावुक से मेरा अभिप्राय कुछ और नहीं, मैं आपके हृदय की ममता और कृतज्ञता की ही बात कर रही थी।"

परीख ने एक दफे कह देने के लिये सांस लिया परन्तु विवश होकर चुप रह गया। कुछ क्षण बाद परीख ने कहा—"ममता का भी एक क्षेत्र है, सीमा है। उसे बिखेरते फिरने से क्या उसकी कद्र शेष रह जायेगी?"

प्रतिमा ने गम्भीर होकर कहा—"नहीं, यदि ममता और कृतज्ञता की सीमा नियत की जायेगी तो वही सीमा मनुष्यत्व की भी होगी।"

परीख ने कहा—"यदि ममता और कृतज्ञता की आपके हृदय में इतनी कद्र है तो एक कुत्ता पालिये।"

प्रतिमा ने मुस्करा कर कहा—"आपने तो एक पाला है न?"

परीख के चेहरे पर वेदना की कालिमा छा गयी। प्रतिमा उसी ओर देख रही थी, मानों सहसा नींद से जग कर उसने कहा—"ओफ़!"

मृत्युञ्जय

"Questi non hanno speranza bi Morte,
E, la lor cieca vita e tanto bassa;
Che invidiose son d, ogni oltra sorte."

"Canto terzo.—'Inferno—'Dante.

"उन्हें मर जाने की भी तो आशा नहीं,
और उनका आशा-किरण रहित जीवन इतना निकृष्ट है,
कि किसी भी प्रकार का परिवर्तन आये,
वे उसके लिये आकुल हैं।"

तीसरा अध्याय—'नरक'—दांते

उपनिषदों में कथा है:—नाचिकेता यमराज के द्वार पर धरना देकर जा बैठे। उस समय यमराज अपने भैंसे पर सवार हो कहीं बाहर गये थे। जब वे लौटे, ब्राह्मण बालक को उनके द्वार पर बैठे तीन दिन बीत चुके थे। वे तीनों दिन-रात उन ब्राह्मण-तनय ने निराहार ही बिता दिये थे। ब्राह्मण को भूखा रखने के महापाप से यमराज भी थर्रा उठे। हाथ जोड़कर बोले—"हे ब्राह्मण तनय, भोजन कर कृतार्थ कीजिये।"

नाचिकेता ने उत्तर दिया—"वरदान पाने पर ही अन्न ग्रहण करूंगा।"

यमराज वर देने के लिये प्रस्तुत हुये। नाचिकेता बोले—"मृत्यु के जीतने का उपाय जानना चाहता हूं।"

यमराज ने इसके बदले पृथ्वी का चक्रवर्ती राज्य देने की इच्छा प्रकट की परन्तु ब्राह्मण बालक अपने हठ पर डटा रहा। कहते हैं, वह रहस्य उसने जान लिया। तब से भारत की ब्राह्मण सन्तान के हाथ वह ज्ञान बपौती के रूप में चला आता है।

मृत्यु को जीतने का अर्थ है, मृत्यु से भय न करना। डाक्टर प्रताप ने 'यम-नचिकेता सम्वाद' पढ़ा था या नहीं, नहीं जानता। शायद नहीं ही पढ़ा होगा परन्तु मृत्यु उससे हार मान गयी थी, यह मेरा विश्वास है। किस ढंग से वह मृत्युञ्जय हो गया, यह उसी के मुंह से नीचे देता हूं। सम्भव है कोई वाग्मी तत्वज्ञ एक उपनिषद् उसके नाम से भी बना सके।

मैंने जब से सुध संभाली, मां को ही जाना। गरीब मां का एकलौता बेटा था। पिता मृत्यु से पूर्व कुछ रुपये छोड़ गये थे। मां ने उनमें से कभी एक पैसा न छुआ। तुम्हें विस्मय होगा, मेरी मां ने मुझे लोगों के घर का चौका-बर्तन करके पाला है। पिता जो कुछ छोड़ गये, उसमें सदा वे कुछ डालती ही गयीं, इस विचार से कि लड़के की पढ़ाई में लगेगा।

बच्चों को समझ नहीं होती। मैं भी बचपन में वैसा ही था। स्कूल में किसी लड़के की गोटेदार टोपी देख बिगड़ उठता। धरती में लोट-लोट कहता—मैं भी ऐसी टोपी लूंगा। मां मुझे गोद में उठा कर मनाती—'मैं अपने राजा बेटा के लिये बहुत बढ़िया टोपी बाज़ार में बनने दे आयी हूं। मेरा राजा बेटा पहन कर स्कूल जायेगा।' इस तरह मैं कितनी चीज़ों के लिये मचल उठता। उस समय मैं नहीं समझता था परन्तु अब समझता हूं—मां को इससे कितना कष्ट होता था। उसकी आंखों में आंसू छलछला आते। एक लम्बी सांस ले वह कहती, 'हाय राम जी!'

स्कूल में आधी छुट्टी के समय लड़के पैसा खरचते हैं। उस समय मैं सतृष्ण नेत्रों से खोमचे वाले के चारों ओर घूम-घूम कर उन्हें चाट खाते देखता। जिस दिन रहा न जाता, मां का आंचल पकड़ धरती पर लोट-लोट पैसे के लिये ज़िद्द करने लगता। मां वही बात कहती—'बेटा, कल पैसे दूंगी।'

वह मुझे गोद में ले झूठी हंसी हंसने का यत्न कर कहती—'मेरा राजा बेटा डाक्टर बनेगा, सन्दूक भर रुपये लायेगा।' हमारी हालत कितनी गरीबी की थी, पर सुखी थे।

जब मिडिल का इम्तिहान दिया, हम लोगों के यहां एक ही चारपाई थी। दो बोरियां बिछा, हम लोग रज़ाई ओढ़ लेते। धोबी का धोया कपड़ा मैंने मेडिकल कालेज में भरती होने तक नहीं पहना।

जब मिडिल की परीक्षा में मैं छात्रवृत्ति लेकर पास हो एन्ट्रेंस में भरती

हो गया, मां के दूसरे का चौका-बर्तन करने की बात फिर सोच सिर लज्जा से नीचे होने लगा पर मां मानती ही न थीं। छः रुपये में हम दोनों का निर्वाह हो सकता था। आखिर मां भी तो सात-आठ ही कमाती थी। मां कहतीं—'बेटा, तेरी कालिज की पढ़ाई का खर्च कैसे जोड़ूंगी, और फिर लाल तेरा ब्याह भी तो मुझे करना है।'

धमका कर कहा—"अगर तू लोगों का चौका-बर्तन करेगी तो मैं चौक वाले कुयें में कूद पड़ूंगा।"

मां ने विष्णु, महेश, काली मना कर कहा—"बेटा, ऐसा कुवचन मुंह से नहीं बोलना।" अस्तु, चौके-बर्तन का काम छूटा तो उस ने दूसरा काम निकाल लिया। वह नारे-आजारबन्द बुनने लगीं। कभी बीज छील कर दो पैसे की मजदूरी कर लेती।

जब एन्ट्रेस की परीक्षा में उत्तीर्ण हो मैंने पन्द्रह रुपये का वजीफा पाया, मां की प्रसन्नता का ठिकाना न था। उस ने मुहल्ले भर में बताशे बांटे। वह मेरा नाम लेकर जीती थी। कड़ी मेहनत और उपवास से अस्थिपंजर-मात्र अवशिष्ट उस के शरीर में यों ही रौनक रहने लगी। हमारी अपनी हैसियत के लोग आ-आकर मां से मेरे ब्याह की बातचीत करने लगे। मां सब का दिल रख कर बात करती परन्तु उस ने किसी से हामी नहीं भरी। उसे विश्वास था, उस के लड़के की बरात किसी डिप्टी या दीवान के यहां जायगी।

अब उसे एक और चिंता लगी। लड़के को कहीं कुछ हो न जाय। मेरी रक्षा के लिये वह नित्य प्रातः नदी स्नान कर पूजा करने लगी। उस की धारणा थी, मेरा कल्याण रावी किनारे वाले महादेव जी की प्रसन्नता पर निर्भर है इसलिये वह नित्य बड़े सवेरे उठ, महादेव जी के चरणों में प्रणाम करने रावी जाने लगी। गर्मी, सर्दी, आंधी, बरसात किसी बात से इस नियम में व्याघात नहीं पड़ सकता था। ज्यों-ज्यों उस का शरीर क्षीण होने लगा, उस की निष्ठा और पूजा बढ़ने लगी। जब मैं एम० बी० बी० एस० के आखिरी साल में पहुंचा, उस का शरीर जर्जर-मात्र रह गया। कई दफे समझाया—सर्दी खा जाओगी, निमोनिया हो जायेगा। परन्तु उस ने कभी न माना।

मैं परीक्षा की तैयारी के लिये तीन बजे सुबह उठ कर पढ़ाई करता था परन्तु वह उस से पहले ही गायब हो जाती। पांच बजे सुबह जब मैं रजाई में छिप कर रोशनी के सामने ठिठुर-ठिठुर कर पढ़ाई कर रहा होता, वह एक पतली ऊनी चादर ओढ़े हरिनाम जपती जाकर रावी से लौटती।

मैं कहता—"मां इस तरह तू मर जायेगी।"

वह हंस कर जवाब देती—"बच्चा, तेरे मुंह में घी शक्कर, राम जी मुझे समेट लें और मुझे क्या चाहिये; बस एक तेरी बहू का मुंह देखना बाकी है।"

आखिर एक दिन वही हुआ, जिस की मुझे आशंका थी। उस का शरीर अस्वस्थ था। मैंने कहा—"एक दिन तेरे जल के बिना महादेव जी प्यासे न मर जायंगे।" पर वह मेरे सोकर उठने के पहले ही नदी स्नान के लिये जा चुकी थी।

मैंने परीक्षा कर देखा, डबल निमोनिया हो गया था परन्तु खैरियत इतनी थी कि साथ ज्वर भी था। चेतन-अर्धचेतन अवस्था में वह केवल हरिनाम जप रही थी। कभी कहती—"···को कह दो अब के बैसाख में लड़के का ब्याह जरूर कर दूंगी। अब मेरे शरीर का क्या भरोसा; विरधावस्था का पका फल है।"

डाक्टर सोंधी के परामर्श से मैंने नुस्खा तैयार किया और शुश्रुषा के लिये हर समय समीप बैठा रहने लगा। वह मुझे कालिज जाने के लिये विवश करती—"तेरा डाक्टरी का इम्तिहान है तू कालिज जा।"

अवकाश लेने कालिज गया था। मुझे घबराया देख कर्नल राबर्ट ने पूछा—"What is wrong with you my boy (बेटा तुम्हें क्या हुआ)?"

मैंने रुंधे हुये गले से उत्तर दिया—"मेरी मां की अवस्था नाजुक है।" मेरी आंखें भीग आईं।

सर्जरी (शल्यक्रिया) में मेरा हाथ साफ होने से प्रिंसिपल कर्नल राबर्ट मुझ पर बहुत प्रसन्न रहते थे। करुणा से उन्होंने कहा—"पागल हुये हो, घबराओ नहीं मैं तुम्हारी मां को देखने आऊंगा।"

तीसरे पहर वे आये। प्रायः बीस मिनिट तक उन्होंने मां को देखा। कुछ तदबीर उन्होंने न बताई। बताने को कुछ था भी नहीं। उन्होंने कहा—"तुम तो खुद डाक्टर हो, सब कुछ समझते हो।"

मां मर गई। मैं पांच दिन तक घर से बाहर नहीं निकला। लोग मुझे समझाने आ बैठते परन्तु मुझे किसी का समझाना असह्य-सा लगता था। मेरा संसार उस दिन समाप्त हो गया। मालूम हुआ, जिस डोर से मेरे जीवन की पतंग चढ़ रही थी, वह सहसा कट गई। मैं अतल अधर में गिरा जा रहा हूं—जैसे बैलून से हवा निकल गई हो। संसार और जीवन मेरे समाप्त हो गये।

परीक्षा देने का मेरा विचार नहीं था। प्रिंसिपल साहिब के अनुरोध से

परीक्षा देनी ही पड़ी। पास कैसे हो गया, इसे भी वे ही जानें। उन्हें आशा थी, मैं सर्वप्रथम रहूंगा पर वैसा न हुआ, सम्भव भी न था।

एक दिन उन्होंने मुझे बुला कर कहा—"देखो, परीक्षा में उपेक्षा से काम लेकर तुमने अच्छा नहीं किया। अब तुम्हारा कप्तान की commission में आना कठिन है परन्तु कर्नल रोज़-हिल मेरे मित्र हैं। उन्होंने तुम्हें पालमपुर में हस्पताल का इंचार्ज बनाना स्वीकार कर लिया है। यदि तुम मन लगाकर काम करोगे तो उन्नति का मौका रहेगा।"

कहा—"नौकरी मैं नहीं करूंगा।"

प्रिंसिपल साहब जानते थे, मैं बहुत गरीब हूं। डाक्टरी की प्रैक्टिस चलाने लायक सरंजाम मुझ से होना कठिन है। विस्मय से उन्होंने कहा—"नौकरी नहीं करोगे? पागल हुये हो क्या?" और समझाया, "पालमपुर कांगड़े की उपत्यका में मनोरम स्थान है। वहां स्वास्थ्य तो सुधरेगा ही, मन भी बहल जायेगा।"

नितान्त अनिच्छा से मैं पालमपुर गया। हस्पताल के कम्पाउण्डर के अतिरिक्त कोई भी मुझ से प्रसन्न न था। मैं कुछ भी न करता, न देखता। पालमपुर का हस्पताल नया ही था। पहाड़ी लोग प्रायः भीरु और वहमी होते हैं। वे यूं भी बहुत कम आते थे। तहसीलदार, थानेदार कभी-कभी मुझ से नुसखे लिया करते वर्ना कम्पाउडर ही मालिक था।

मैं प्रायः बरामदे में या बाहर घास पर डेक चेयर डाले बैठा देवदार और चीड़ के घने जंगलों में छाये पहाड़ों को या हिमावृत्त पर्वत-शिखरों की ओर देखा करता। मुझे मालूम होता—उन श्वेत पर्वत-शिखरों में श्वेत चादर ओढ़े मेरी मां बैठी प्रतीक्षा कर रही है। दूर से मुर्गे की दर्द भरी बांग सुन कर मेरा ध्यान टूट जाता।

हस्पताल के नीचे घाटी के उस पार ढलवानों पर चाय के बगीचे हैं। इनमें पत्तियां चुनती पहाड़ी स्त्रियों के झुण्ड भेड़ों के समान दिखायी देते। कभी उधर की वायु के झोंके के साथ उनके सम्मिलित राग की अस्पष्ट, कम्पित सी लहरी भी सुनायी पड़ जाती।

लोग कहते हैं—पालमपुर नन्दन-कानन है। सर मालकम हेली तो पालमपुर पर इतने रीझे कि शिमले की जगह इसे ही गरमियों के लिये पंजाब की राजधानी बना देना चाहते थे परन्तु मुझे यह सब बिलकुल नीरस जान पड़ता था।

नीचे घाटी की तलहटी में खर की झाड़ियों में से बल खाती, कल-कल करती पानी की एक धारा बहती है। इस पानी को रोक कर जहां-तहां पहाड़ी

लोगों ने पनचक्कियां बना ली हैं। वहां जगह-जगह बड़ी-बड़ी चट्टानें पड़ी हैं। घण्टों मैं इन्हीं चट्टानों पर बैठ कर निरुद्देश्य समय गुजार देता।

एक रोज़ तीसरे पहर यों ही एक चट्टान पर बैठा एक बंगले के भव्य रूप को देख रहा था। एक गूजर की लड़की, बारह-तेरह बरस की, अपनी भैंस को धार पर पानी पिलाने आयी। भैंस की चौड़ी पीठ पर वह अपने डेढ़ बरस के भाई को साधे थी। छोकरा गूजरों का कनटोप ओढ़े मज़े में 'तत-तत' कर एक पतली-सी छड़ी से अपनी सवारी को हांके चला आ रहा था। पानी के किनारे पहुंच गर्दन झुका कर ज्यों ही भैंस जल्दी से आगे बढ़ी, बच्चा कद्दू-सा लुढ़क कर नीचे आ गिरा।

लड़की ने घबरा कर बच्चे को उठाया परन्तु उस के सिर से खून बहता देख वह स्वयं भी चिल्ला कर रोने लगी। बच्चा सहम गया था परन्तु बहिन का रोना देख उस ने भी मुंह पसार दिया।

बच्चे की चोट को हाथ से दबा लड़की ने खून रोकना चाहा परन्तु वह न रुका। यह देख मैं उठा। लड़की के हाथ से बच्चे को ले अपना रूमाल पानी में भिगो घाव पर दबा दिया। सिर की खाल प्रायः डेढ़ इंच फट गयी थी।

बच्चे को अपने ही हाथों में लिये मैं हस्पताल लौटा। लड़की पीछे-पीछे भागी चली आई। स्वयं बच्चे की मरहम पट्टी की। वह भाग-भाग कर अपनी बहिन के पास जाना चाहता था, यह देख हंसी आ गई। पट्टी बांध अपने ही हाथों उस का मुंह धो दिया। नाक के मैल की न जाने कितनी तहें उस के गालों पर जम रही थीं। उस के मैले कुचैले कपड़े फाड़, चिलमची में बैठा मैंने उसे साबुन से नहलाया। उस का भूरा घुंघरेदार बदन खूब गोरा-गुलाबी निकल आया। जब तौलिये से उस का शरीर पोंछ रहा था, वह मेरे हाथों में ही सो गया। वह छोकरी अपनी बड़ी-बड़ी कातर आंखों से निरन्तर मेरी ओर देखती रही।

उस सुन्दर सुडौल बच्चे के प्रति मन में एक प्रकार का मोह या ममता सी पैदा हो गई। उसे तौलिये में लपेट मेज़ पर सुला मैंने लड़की की ओर देख कर कहा—"बैठ जाओ।"

लड़की की आंखों से दो बूंद आंसू टपक पड़े। उसे भयभीत देख समीप बुला उस का नाम पूछा। गले में रुके हुये आंसू पी उस ने कहा—"नूरी।"

नूरी के मैले शरीर और कपड़ों की ओर संकेत कर कहा—"नूरी, तू बहुत मैली है।"

वह इस का अर्थ न समझ अपनी कातर आंखों से मेरी ओर देखती रही। उस से फिर पूछा—"नूरी, तू कभी नहाती है ?"

सिर हिला कर उस ने उत्तर दिया—"नहीं।"

पूछा—"क्यों ?"

उस ने कहा—"जाड़ा लगता है।"

उस से बातचीत करता रहा—उस के यहां कितनी भैंसे हैं ? कितना दूध होता है ? इत्यादि-इत्यादि। बहुत शनैः-शनैः वह मेरी बातों का उत्तर देती थी।

कुछ देर में बच्चे ने आंखें खोल गिरगिट की तरह सिर उठा दिया। नूरी ने झट से मेज़ के पास से बच्चे को उठा लिया और अधीरता से उसे चुमकारने लगी।

हाथ फैला मैंने बच्चे को पुचकारा पर उस ने मुंह फेर लिया।

मोह ठोकर खा कर जाग उठता है ! उन बच्चों को अपने सामने से चले जाने देने की इच्छा न होती थी। इच्छा हुई, उन्हें कुछ खाने को दूं पर वहां क्या रखा था ? एक कागज़ में चीनी डाल, मेज पर रख बच्चे के विरोध के बावजूद उसे बहिन की गोद से ले मेज़ पर बिठा दिया। वह मुंह फाड़ चिल्लाने लगा। एक चुटकी चीनी उस के खुले मुंह में डाल दी। मुंह में लार भर आने से उस के लिये रोना मुश्किल हो गया। आंसू भरी आंखों से वह चीनी खाने लगा। मैंने नूरी को भी चीनी दी। वह व्यस्तता से उंगलियां चाट-चाट खाने लगी। आखिर लड़की को दूसरे रोज़ दवाई के लिये फिर बच्चे को लाने को कह, मैंने उन्हें बिदा किया।

वह दिन और दिनों से भिन्न था। उस दिन मन में उदासी और शरीर में शिथिलता अनुभव न हुई। बराण्डे में टहलता रहा, बाजार भी गया। कुछ मिठाई और फल भी खरीद लाया। दूसरे दिन कई मरीजों को मैंने स्वयं दवाई दी और नूरी और बच्चे की प्रतीक्षा करता रहा।

लगभग दस बजे नूरी अपने बाप के साथ बच्चे को लेकर आई। बच्चा अपने बाप के कंधे पर सवार, एक पतली छड़ी से अपनी सवारी को हांकता चला आ रहा था। नूरी के सिर पर दूध की एक मटकी थी।

नूरी के बाप ने बड़ी दीनता से सलाम किया और पीर से मेरे जान-माल के खैर की दुआ मांगी। मैंने बच्चे को पुचकारा परन्तु उस ने डर कर बाप की गोद में सिर छिपा लिया।

बाप ने बच्चे की पीठ पर स्नेह से हाथ फेर कर कहा—"बेटा मम्दू, डाक्टर साहब को सलाम करो।" मम्दू और भी मचल कर बाप के गले से लिपट गया।

मेज़ के दराज़ से एक लाल सेब निकाल मैंने मम्दू को दिखाया। सेब देख मम्दू दुविधा में पड़ गया। उस ने मेरी ओर देखा, फिर बाप की ओर देखा और फिर शंकित चित्त से शनैः-शनैः मेरी गोद में आ गया। मम्दू का ड्रेसिंग (मरहम पट्टी) खुद ही किया। उस का रोना और ठुनकना मुझे बहुत भला लगा। बाजार से लाई मिठाई बच्चों को दी। घण्टे भर बाद वे लोग चले गये। गूजर को मैं प्रायः साबुन देता रहता। बच्चे भी मिठाई के लोभ से नहाना स्वीकार कर लेते।

नूरी और मम्दू काफी साफ-सुथरे नित्य सुबह मेरे लिये दूध का बर्तन लेकर आते और शाम को लौटा ले जाते। आहिस्ता-आहिस्ता दूसरे बच्चे भी आने लगे। नित्य तीसरे पहर प्रायः आठ-दस बच्चे मुझे घेर लेते। चांय-चांय, कांय-कांय मच जाती। प्रायः डेढ़-दो घण्टे इसी में बीत जाते। अब डेक चेयर पर बैठ कर शून्य दृष्टि से हिम शृंगों को न देखता रहता। नीचे धार पर गये भी कई-कई दिन बीत जाते।

ईद पर नूरी और मम्दू के लिये कपड़े सिलवाये। नूरी की दुबली-पतली देह काली रेशम के तंग पायजामे, गुलाबी कुरते और पीली चुनरिया में फूलों पर मंडराती तितली जैसी जान पड़ती। मम्दू रंगीन फुटबाल-सा लुढ़कता फिरता। दूर से ही उन्हें आते देख मैं हाथ फैला देता। नूरी दौड़ कर मेरी बाहों में आ जाती और मम्दू घुटनों से चिपट कर उछलने लगता। कभी-कभी नूरी घर से मिट्टी के प्याले में खीर ले आती और मुझे उसे खाने के लिये विवश करती।

नूरी को मैं 'नूरी बिट्टी' कह कर पुकारता था। उस की बात मैं टाल न पाता। मम्दू बुद्धू था और शैतान भी। कभी यह तोड़ता, कभी वह फोड़ता परन्तु नूरी अपने भोलेपन में चिंता और करुणा का पुट लिये रहती। मैं झूठ-मूठ आंख बन्द कर लेता। नूरी पूछती—"क्या हुआ ?"

मैं कह देता—"सिर दुखता है।"

वह आकुलता से अपने हाथों मेरा सिर दबाने लगती। मैं हंस पड़ता। वह झेंप कर आंखें मूंद लेती। मैं उस का सिर चूम लेता।

मम्दू मिठाई लेकर चम्पत हो जाता परन्तु नूरी घण्टों मेरी कुर्सी के पास बैठी रहती। कभी घास के तिनके ले खिलौनों की टोकरियां बनाती, कभी अपनी गुड़िया सजाती, कभी मुझे पहाड़ी गीत सुनाती। वह पहाड़ी गीत, "गोरियेदा मन लगया चम्बे दिये धारे···।" उसे खूब याद था। वह एक बरस कैसे गुजर गया, कुछ मालूम न हुआ।

एक दिन तीसरे पहर गूजर आ मेरी कुर्सी के समीप ज़मीन पर बैठ गया। भूमिका बांध उस ने कहा—'निराली' ग्राम में वह अपनी एक भैंस का सौदा करने गया था। महीने भर में नूरी का ब्याह उसे कर देना है। उसी के खर्च के लिये वह भैंस वेचने को मजवूर हुआ है।

मैंने गूजर से कहा—"नूरी तो अभी बच्ची है, उस के ब्याह की इतनी जल्दी क्या ?"

गूजर ने कहा—"समधी तो नहीं मानता। बरस भर हुआ उस की गूजरी बुखार से मर गई। घर में काम-काज के लिये कोई औरत नहीं, वह कैसे मानेगा ? सगाई हुये तीन बरस भी तो हो गये।"

ब्याह के खर्च की बात चली। गूजर ने बताया, बिरादरी को दो भात देने ही होंगे—एक मीठा और एक नमकीन। पीर दरया की दरगाह पर चादर भी चढ़ानी ही होगी। लड़की के लिये दो एक चीज़ चांदी की गढ़ाना ज़रूरी है। साठ-सत्तर से कम खर्च नहीं होगा।

मन में सोचा, हमारी नूरी का ब्याह है। एक प्रकार की उमंग-सी अनुभव हुई। नूरी दूर चली जायगी, इस खयाल से कुछ दुख भी हुआ। भैंस वेचने के लिये गूजर को मना कर दिया। उस मास का वेतन तहसील से मुझे दो ही चार दिन पहिले मिला था। सौ रुपये लाकर गूजर को गिन दिये और कहा, "नूरी जैसी तुम्हारी वेटी, वैसी हमारी। ब्याह खूब धूमधाम से हो। अच्छे गहने कपड़े बनवाना।" गूजर पागल की तरह मेरे पैरों से लिपट गया, उस से पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया।

नूरी के लिये और उस के दूल्हे के लिये एक-एक जोड़ा कपड़े मैंने खुद भी बनवा दिये। ब्याह से कुछ दिन पहिले नूरी आकर मेरी कुर्सी से पीठ सटा कर बैठ जाती। मैं अपने हाथ उस के सिर पर रख देता।

गोरखा चौकीदार की स्त्री से नूरी ने अपनी तमाम बुद्धि व्यय कर मोजा बुनना सीखा था। देसी ऊन का एक जोड़ा खूब मोटा मोजा उस ने अपने हाथों से कई दिन में बुन कर तैयार किया और अपने ही हाथों उसे मेरे पैरों में पहना, उस ने अभिमान और सन्तोष से मेरी ओर देखा। गद्‌गद् हो उसे गोद में उठा मैंने चूम लिया।

मैंने कहा—"नूरी अब तू सुसराल चली जायगी, फिर मैं तुझे कैसे प्यार करूंगा ?"

नूरी ने अपना सिर मेरी छाती पर झुका दिया। जब मेरी कमीज़ भीग

गई तो मैंने उस का सिर उठा कर देखा—वह रो रही थी।

हंस कर कहा—"अरे पगली लड़की, तू तो रो रही है।" वह लजा कर भाग गई।

नूरी का व्याह खूब धूमधाम से हुआ, खूब झांझ-तासे बजे। मैंने घर बैठ कर उन्हें सुना। मम्दू को साथ लेकर नूरी की मां परात भर भात मेरे लिये दे गई।

व्याह हो गया और नूरी का दूल्हा उसे लेकर चला गया। व्याह का झंझट समाप्त कर नूरी का बाप सलाम करने आया। उस ने कहा—"तीन दिन बाद नूरी का दूल्हा उसे लौटाने आयेगा तो वह लड़की को कम से कम महीना भर टिकायेगा।"

तीन दिन उदासी में कटे। मम्दू आता, दो-चार बात तोतली बोली में बोल मिठाई ले चम्पत हो जाता। तीसरे दिन धूप ढलने लगी थी। बरामदे में बैठा मैं ट्रिब्यून के पृष्ठ पलट रहा था, दूर से मम्दू चीखता हुआ सुनाई दिया—"लूरी आई, वेब्रे आई, लूरी आई, वेवे आई।"

बाहर निकल मैंने देखा, नूरी रंग-विरंगे कपड़े पहने, छमछम करती चली आ रही है और उस के पीछे मम्दू भी लुढ़कता हुआ चला आ रहा है। जैसे बछड़े को देख गाय रंभा कर दौड़ती है, वैसे ही मैं भी उस की ओर दौड़ा। उसे अपनी बाहों में भर लिया। दो घण्टे तक नूरी मुझे अपने सुसराल की बातें सुनाती रही फिर मम्दू को लेकर चली गई। मैंने कहा—"कल सुबह ही आना। उस ने सिर झुका कर कहा—"हां!"

दूसरे दिन सुबह गूजर की पुकार से मेरी नींद खुली। मैंने पूछा—"हुआ क्या?"

दोनों हाथों से सिर पीट वह धम से फर्श पर गिर पड़ा—"मैं बरबाद हो गया डाक्टर साहब, बचाओ!" उस ने रोकर कहा।

आशंका से मेरा हृदय घबरा उठा। मेरे फिर पूछने पर उस ने बताया—"कल नूरी यहां आई थी, इस बात से उस का दूल्हा नाराज़ हो गया। रात में हंसिये से उस ने नूरी की नाक काट ली।"

एक दफे अपने कानों का विश्वास न कर मैं बिस्तर से उछल पड़ा। गूजर के दोबारा वही बात दोहराने पर ताबड़तोड़ सर्जरी का बेग ले मैं गूजर के घर पर पहुंचा। सब लोग रो रहे थे। दूल्हा भाग गया था।

नूरी की खटिया के तमाम कपड़े लहू से तर थे। वह बेसुध पड़ी थी। मैंने

उसकी नाड़ी देखी, हृदय की गति देखी; मालूम न हो सका की अभी जीवन शेष है या नहीं। तुरन्त सीने पर सुई लगा दी और फिर ध्यान से जीवन के चिन्ह देखने लगा। कोई चिन्ह न था।

मैं मूक भाव से नूरी के शव को देखता रहा। फिर घर लौट लेट रहा।

कम्पाउण्डर ने आकर कहा—"तहसीलदार साहिब याद फर्माते हैं।" हाथ हिला कर उसे बाहिर चले जाने का इशारा कर दिया। नौकर आता और झांक कर चला जाता। तीसरे पहर आकर बच्चों ने हस्दमामूल शोर मचाया पर मुझसे उठा न गया। पांच दिन तक यही हालत रही। छठे दिन बिस्तर बांध मैं लाहौर लौट आया।

तुम कहते हो—मैं मौत को बुला रहा हूं। मैं कहता हूं—मौत आती कहां है! वह मुझ से नफरत करती है।

डाक्टर प्रताप की इच्छा न होने पर भी मैंने उसे हृदय रोग विशेषज्ञ डाक्टर सूरी को दिखाया पर उस ने कोई दवाई न ली। इसी से कहता हूं, प्रताप से मृत्यु हार गई थी, यमराज परास्त हो गये थे क्योंकि उसे इनका भय न था। हां उपनिषदों में जरूर इस उपाय का उपदेश नहीं है।

मृत्यु के पश्चात उसके तकिये के नीचे से अनगढ़ हाथों का बुना एक जोड़ा ऊनी मोजा निकला। प्रताप की स्मृति में यह जोड़ा रख लेने की इच्छा हुई लेकिन कुछ सोच कर, चिता में उस के सिर के नीचे वह जोड़ा भी रख देना उचित समझा।

शर्त ?

पूस का महीना, बादल घिरी सांझ, रिसरिस कर पानी बरस रहा था। खूब जाड़ा था। ऐसे समय कोई आदमी घर छोड़ कर मेरे यहां आयगा ऐसी आशा न थी। एक बंगाली उपन्यास निरुपमा देवी का लिए अंगीठी के सामने आराम कुर्सी पर बैठ, सामने दूसरी कुर्सी पर पैर टिकाये पढ़ रहा था। बादलों के कारण अंधेरा हो जाने से सरे शाम से ही बिजली जल रही थी।

मैं उपन्यास में तन्मय था। कमरे में कोई कब घुस आया, यह मुझे जान नहीं पड़ा परन्तु जब पैरों के नीचे से कुर्सी खींच लिये जाने पर पैर धम से नीच जा गिरे, किताब से नज़र उठा कर देखा कि सामने की कुर्सी पर सन्तू बैठा है।

सन्तू का मेरे यहां आने का कोई समय-असमय नहीं लेकिन इस जाड़े के मेंह में और फिर बिना बुलाये उसका यों धम से कुर्सी पर गिर पड़ना !

मैं चुपचाप पल भर उसकी ओर देखता रहा। सन्तू की नज़र अंगीठी की तरफ थी। हाथ के सिगरेट से एक खूब लम्बा कश खींच कर उसने सिगरेट के टुकड़े को अंगीठी में फेंक दिया। उस की दृष्टि अब भी उसी ओर थी। सिगरेट के उस टुकड़े से धुआं उठा, लौ उठी और वह समाप्त हो गया। अन्त में मुझे ही वह चुप्पी तोड़नी पड़ी। उसे सचेत करने के लिए मैंने पूछा—"क्यों ?"

जेब से रूमाल निकाल मुख और बालों पर पड़ी मेह की बूंदें पोंछते हुए उसने दीर्घ उसास लेकर कहा—"हूं।" और फिर गुम हो रहा।

उत्सुकता से मैंने पूछा—"क्यों क्या बात है ?"

बेचैनी से पैर पटक मेरी ओर देख कर उसने खिन्न स्वर में कहा—"क्या यार, दुनिया का कुछ पता नहीं।"

हाथ की किताब मूंदते हुये मैंने फिर दुहराया—"क्यों क्या बात है ?"

"हूं ।" कह और भी अधिक एक लम्बी सांस उस ने खींची ओर खिन्नता से मुसकराने की चेष्टा कर मुंह फेर लिया ।

अवश्य ही कोई असाधारण घटना घट गई है, जिसे मुख तक लाने में सन्तू एक आरम्भ की खोज में है—मैंने सोचा । इसलिये फिर सहारा दिया—"सीधे घर से ही आ रहे हो क्या ?"

इन्कार से सिर हिलाते हुये उस ने कहा—"क्या बताऊं···इन औरतों का कुछ विश्वास नहीं ।"

औरतों का नाम सुनते ही मेरा कौतूहल विशेष जग उठा । जरा बन कर मैंने कहा—"रवीन्द्रनाथ ने भी तो कहा है, स्त्री के मन का भेद त्रिलोक में भी कोई नहीं भांप सकता ।"

सन्तू छूटते ही बोला—"बिलकुल ठीक । मैं तो पहले से जानता था और तुम से छिपा नहीं कि मैं लड़कियों से ज्यादा मेल-जोल नहीं रखता । मेरा तो वही उसूल है—दूर-दूर लेकिन आज तेरे सामने सिद्ध कर दूंगा कि तू जो उस पद्मा को दूध की धुली देवी कहता है···आज मैं सब जान गया हूं । स्वयं आंखों से देख आया हूं और एलानिया कहता हूं । मैंने पहले भी कई दफे तुझ से कह दिया है, बड़ी छत्तीसी है, उस की जड़ें पाताल में हैं; लेकिन तू नहीं मानता था ।"

मुझे याद नहीं, कभी सन्तू ने यह सब इतने जोर से कहा हो परन्तु उस की बात को मैंने काटा नहीं । वह कहता गया—"यह जितनी चिकनी-चुपड़ी देवियां बनी रहती हैं, इन सब के पोल हैं और मैं साबित कर सकता हूं ।"

क्या हुआ ?" मैंने व्यग्रता से फिर पूछा ।

सन्तू उसी स्वर में कहने लगा—"मैं पहले ही कहता था नारायण जो मदन के घर में यों ही आता-जाता है, उसे देखते ही जो पद्मा उछल कर बाहर आ फुदकने लगती है, उस का कुछ मतलब है । यह हाथ मिलाना मेरी समझ में नहीं आता । हाथ मिलाने की क्या जरूरत ? मुझ से भी हाथ मिलाने लगती है वह । निर्लज्जता की भी एक हद होनी चाहिये । मैं तो दूर से ही हाथ जोड़ देता हूं । नारायण प्रायः हर रोज़ मदन के यहां जाता है और ऐसे समय जब मदन घर पर न हो ।

"हम तो ऐसे समय नहीं जाते परन्तु उसे वहां सदा ऐसे ही समय देखता हूं । कोई मर्द उस के घर आये, वह कूद-कूद कर उस के आगे-पीछे नाचने लगेगी, बिलकुल कुतियों की तरह ।"

सन्तू का क्रोध और ग्लानि देख कर मुझे निश्चय हो गया कि आज अवश्य ही कुछ अघट घटना हो गई है। सन्तू ने सांस लेकर फिर कहना आरम्भ किया—"मैं कहता हूं, इस बनाव-सिंगार और टीम-टाम की जरूरत ही क्या ? यह फंसाने की चालें नहीं तो और क्या है ? इसीलिये मैं उस से कभी बोलता नहीं। दूर ही से हाथ जोड़ कर कह देता हूं, देवी, तू दूर ही रह !

"लेकिन उसे तो चाऊं-माऊं करने की आदत है। वह समझती है, सभी एक जैसे हैं पर यहां क्या रखा है ? नारायण तो मैं हूं नहीं जो 'पार्कर' का कलम दूं, दिवाली के दिन चाकलेटों के डिब्बे भेंट करूं; नरगिस के फूलों के गुलदस्ते, रेशमी रूमाल और उपन्यास ला दूं। यहां एक पैसे के दिवाल नहीं। मैं जाता हूं मदन से मिलने और वह समझती है कि मैं उस के लिये आया हूं।

"मैं अभी इधर आते-आते रास्ते में मदन से मिलने गया था। मदन था नहीं, मैं लौटने लगा। झट सामने आ खड़ी हुई। कहने लगी—"आइये, मदन भाई अभी आ जायंगे।"

"मुझे बेबस बैठना पड़ा। लगी उल्लू की तरह झप-झप मेरा मुंह ताकने। मुझे बहुत बुरा मालूम हुआ। ऐसे ही पूछा—"आप क्या कर रही थीं।"

"जवाब मिला—ऐसे ही एक किताब देख रही थी। पूछा, कौन-सी किताब ? आंखें मटका कर बोली, ऐसे ही एक कविता की पुस्तक थी।

"यह तो मैं ताड़ गया कि पुस्तक जरूर नारायण का उपहार है परन्तु ऐसे ही बन कर मैंने कहा—अच्छा दिखाओ, कौन-सी पुस्तक है ?

"लगी टालने। आखिर भीतर गई। चुड़ैल ने क्या किया, कविता की वह पुस्तक 'तारे' जो एक दफे मदन का मन रखने के लिये मैंने उसे भेंट कर दी थी उठा लाई। मैं भला इस छल-छन्द में आने वाला हूं ? मैंने पुस्तक देखने के लिये मांगी तो इधर-उधर करने लगी। एक ही कुटनी है। लगी हाव-भाव दिखाने पर इस बालू में तेल कहां ?

"जब वह पुस्तक छिपाने लगी, तो मैं भी भांप गया कि जरूर दाल में कुछ काला है।

"मैंने फिर पुस्तक मांगी। कहने लगी—क्या कीजियेगा, आप ही की तो है।

"मैंने कहा—एक कविता दिखाऊंगा।

"उसने पुस्तक में से पासपोर्ट साइज का एक फोटो निकल कर छिपा लिया और किताब मेरे हाथ में दे दी।

"मैं अन्धा तो हूं नहीं। बात की हद तक पहुंचने के लिये मैंने कहा—जरा

वह फोटो तो दिखाइये !" फोटो भला वह कैसे दिखाती; सब भेद खुल न जाता ? शर्त बदता हूं फोटो नारायण का है। यदि मदन का होता, छिपाने की क्या ज़रूरत थी ?

"मैंने हाथ बढ़ाकर फोटो लेना चाहा। वह लगी इधर-उधर मटकने। कभी पीठ के पीछे छिपाती, कभी इधर-उधर। मैंने सहज भाव से हाथ पकड़ने की कोशिश की परन्तु वह तो चाहती थी हाथा-पाई करना···और यह अपने बस का नहीं। इतने में नारायण ने पुकारा तो मैं जान छुड़ा कर भागा।

"यह मैं दावे से कह सकता हूं कि वह फोटो नारायण का था। उपहार के बाद फोटो की नौबत पहुंची है और अब उसे छिपाने की भी ज़रूरत पड़ने लगी। कभी देखा नहीं, कैसे बढ़-बढ़ कर हाथ मिलाती है ?"

इतना कह कर सन्तू फिर अंगीठी के कोयलों की ओर देखने लगा। उसकी आंखों से चिन्गारियां निकल रही थीं। दरअसल उसे इतना क्रोध ही था या अंगीठी की झलक से वैसा मालूम पड़ रहा था, यह निश्चय से नहीं कह सकता। मैंने कुर्सी पर करवट बदलते हुये कहा—"तो फोटो दिखाया नहीं ?"

उसने तिनक कर कहा—"फोटो नारायण का है। मैं इस बात पर जो शर्त चाहो, बदने को तैयार हूं ! अगर इस बात का भण्डाफोड़ मैंने न कर दिया तो मेरा नाम सन्तकुमार नहीं। मैं कहता हूं—आदमी ब्याह कर ले, झगड़ा खतम हुआ। बाहर और भीतर और यह कुल्टाओं की सी चालें क्यों ! यह सब जाल नारायण के रुपये के लिये है।"

बात मेरी समझ में आ गयी। मैंने कहा—"नारायण रुपये वाला है, इसमें शक नहीं। देखने-सुनने में भी अच्छा है। उसे कौन लड़की नहीं चाहेगी।"

सन्तू तड़प कर बोला—"कुछ नहीं, सब रुपये का लोभ है। मैं सब जानता हूं और देखना, मैं सब दिखा दूंगा।"

कुछ देर लड़कियों के अत्याचार की विवेचना कर, कुंआरों की दयनीय दशा के प्रति हम लोग क्षुब्ध रहे। उसके बाद मैंने कहा—"यार सन्तू, तू चालाक तो बहुत है परन्तु एक काम करे तो जानूं।"

तिर्छी नज़र से मेरी ओर देख कर उसने कहा—"क्या ?"

"वह फोटो अगर तू निकाल लाये तब बहादुरी है।"

इस बात का सीधा कोई उत्तर न दे सन्तू ने कहा—"मैं शर्त बद कर कहता हूं वह फोटो नारायण का है और रुपये के लिये ही वह नारायण पर फन्दा डाल रही है परन्तु ऐसी लड़की से···लेकिन नारायण भी गधा है। वह बिल्कुल

अन्धों की तरह उसके गोरे चमड़ पर मर रहा है।"

"सो तो है," मैंने कहा, "परन्तु बिना प्रमाण के मज़ा नहीं। रंगे हाथों ले, तब बात है।"

आखिर यह जाल रचा गया—सन्तू पद्मा के यहां रोज़ न सही, दूसरे-तीसरे जाता ही है। वहां उसे घर के आदमी की तरह पूरी स्वतंत्रता है। सन्तू कल उनके यहां जाकर अपनी एक पुस्तक भूल आये। फिर ऐसे समय जब मदन और पद्मा दोनों में से कोई घर पर न हो, वहां जाकर मदन की मां या अन्य किसी व्यक्ति से कह कर अपनी पुस्तक लेने के बहाने, पद्मा की पुस्तकों की आलमारी से वह पुस्तक 'तारे' जिसमें नारायण का फोटो पद्मा ने छिपा कर रखा है—उठा लाये। इसके पश्चात फिर देखा जायेगा।

जोड़-तोड़ लगा कर देखने से जान पड़ा कि ऐसा सहज सुयोग सन्तू को, बुधवार तीसरे पहर से पहले नहीं लग सकता। उस समय पद्मा का 'स्त्री-बुध सभा' में जाना निश्चय था और मदन कैमिस्ट्री की क्लास छोड़ नहीं सकता था।

मैं प्रतीक्षा में बैठा था। सन्तू की साइकिल की घण्टी का शब्द सुनायी दिया। उचक कर देखा—मकान की कुर्सी की सीढ़ी पर एक पांव रख, ब्रेक दबा, साइकिल को झट से रोका और उसे गिरता-पड़ता छोड़ सन्तू भीतर कूद आया।

उसके हाथ में दो पुस्तकें थीं—एक मोटी और दूसरी पतली सी। उसके चेहरे पर विजय-गौरव झलक रहा था। उत्सुकता से उसकी ओर देखकर मैंने पूछा—"क्यों?"

वह सपाटे से साइकिल दौड़ा कर आया था। हांफता हुआ बोला—"किताबें दोनों आलमारी से लेकर हटा ली थीं कि अचानक मदन आ पहुंचा। बड़ी कठिनता से बात बना कर निकल पाया। अभी किताबें खोली भी कहां हैं।"

यह कह कर हरे रंग की मोटी सी पुस्तक उसने फर्श पर डाल दी और कुर्सी पर बैठते हुये उस पतली सी पुस्तक को दोनों हाथों में लेकर बोला—"अभी सब भेद खुला जाता है।"

पुस्तक को खोलते ही वह फोटो वाला पन्ना स्वयं उघड़ गया। मैं अत्यन्त कौतूहल से मुंह बाये उसकी ओर देख रहा था।

सन्तू उस तस्वीर को देखता रहा, मुंह से कुछ बोला नहीं। उसके मुख

का भाव बदलता देख, उचक कर ज्यों ही मैंने फोटो पर नज़र डालनी चाही—आश्चर्य ! सन्तू ने तस्वीर को छिपा लिया ।

मैं हैरान था···।

सन्तू की आंखों में सब कुछ बदल गया, कनपटियां लाल हो गयीं, माथे पर पसीना झलकने लगा । आग्रह से मैंने कहा—"दिखा यार, छिपाता क्यों है ?"

उद्वेग से टूटे स्वर में सन्तू बोला—"किसी से कहना नहीं !"

पुस्तक उसके हाथ से छीन ली । देखा तो हैरान रह गया । फोटो सन्तू का था और जिस कविता पर वह रखा हुआ था, उसमें 'प्यारे···तारे···हमारे उजियारे' कुछ-कुछ ऐसा ही अन्त्यानुप्रास था ।

कृत्रिम क्रोध से ओंठ चबा मैंने कहा—"बदमाश !"

भावावेश के कारण सन्तू से कुछ कहते न बना । जब एक प्याली चाय उसके गले के नीचे उतर गयी तब चायदानी की ओर देख उसने कहा—"और जो हो, एक बात कहूंगा—"कम से कम उसके स्वभाव में बनावट नहीं है ।"

उसकी ओर देख कर मैं चुप रह गया । उसने फिर भी कहा—"और उसकी सादगी देख पूजा करने को मन चाहता है ।" मुख की चाय के गरम घूंट ज्यों-त्यों निगल कर मैं बोला, "सो तो है ही ।"

दूसरी प्याली समाप्त करने के पश्चात सुस्त हो छत की ओर देख सन्तू बोला—"दरअसल There is nothing good or bad, only thinking maks it so. (अच्छा-बुरा कुछ नहीं, सब समझ का खेल है···)।"

तिर्छी नज़र से उसकी ओर देख पूछा—"और वह शर्त ?"

सन्तू ने दांत निकाल दिये ।

शर्त जीतने पर वह इतना प्रसन्न होता या नहीं, कहना कठिन है ।

तीसरी चिता

हृदय के लिये सबसे बड़ी व्यथा, शायद जीवन के लिये सब से बड़ी व्याधि है शक ! दांत का उत्कट दर्द, तपेदिक की मर्मान्तिक पीड़ा और दमे में दम का रुकना दौरे के रूप में आता है गुज़र जाता है, या फिर व्यथा का मूल, प्राण ही चले जाते हैं परन्तु शक और 'अपनी' ·· के प्रति शक, उसके चाल-चलन के सम्बन्ध में इशारेबाज़ी या कानाफूसी, इसे कौन नर-शार्दूल सह सकता है ? शायद सह सकते हैं या तो नर-कुक्कुर या फिर देवता जो आवेश-उन्मेष और अनुभूति से परे हैं परन्तु देवताओं के सम्बन्ध में पुराणों में ऐसे आख्यान मौजूद हैं जो उन्हें इस नीचता या महत्ता से बरी कर देते हैं।

माला को जयदेव ने अशेष रूप से आराध्य समझा था। उसकी कल्पना जहां तक जा सकती थी, उस से बहुत अधिक दूर तक माला की कमनीयता, सहृदयता और पुरुष की दृष्टि में स्त्री का चरम सौन्दर्य, अन्यतम गुण—सतीत्व व्यापक था। जयदेव का मस्तिष्क और आत्मा एक निर्विकार आनन्द के जगत में खो गये थे। उस जगत का प्रत्येक रूप या चिन्ह था, माला का मुग्धकर रूप।

लेकिन यह रंग बहुत दिन ठहर न सका। अब जयदेव का मन घृणा से उद्विग्न और घर से विरक्त था। जासूसी करके सबूत ढूंढ़ने जाना उसके आत्माभिमान के लिये असह्य था। एक युग था जब पुरुष असति नारी और उसके प्रेम-पात्र के रक्त से अपने पौरुष के अपमान का कलंक धो सकते थे, कलंकिनी को कमर तक गड़वा कर कुत्तों से नुचवा सकते थे। उस समय वही न्याय था, यही मर्यादा थी। समय के साथ न्याय और मर्यादा की धारणा बदल गयी।

स्त्री के प्रति तिर्छी नज़र से देखना या उसे धमकाना आज पुरुष का लक्षण है। रोज़मर्रा की जलन से बचने के लिये अलबत्ता ऐसी स्त्री को अलग कर दिया जा सकता है परन्तु वह सिर दर्द के लिये मूंड़ काटने का सा इलाज

है । अपनी अयोग्यता अपने अपौरुष का ढिंढोरा पीटना है ।

और फिर वह अपमान भी कैसा ? पति के स्वयं व्यभिचारी होने पर भी भद्र समाज में उसके लिये गुंजाइश है परन्तु जिसकी स्त्री असति है उसके लिये भद्र समाज क्या, समाज के निचले तबके में भी स्थान नहीं । कोढ़ी से भी अधिक अछूत और भ्रूण-घातक से भी अधिक जघन्य वह व्यक्ति है । अपने आपको यों हेय उद्घोषित करने की अपेक्षा, अपने हृत्पिण्ड में स्वयं दांत गड़ा कर समाप्त हो जाना आसान है ।

भीतर इतना भयंकर ध्वंस और भूकम्प आ जाने पर भी जयदेव के जीवन में प्रत्यक्ष अन्तर केवल इतना ही था कि अब वह पहिले की अपेक्षा अधिक चिन्ताशील और चुप जान पड़ता । जिन लोगों के कानों तक अपवाद की सुर-सुराहट नहीं पहुंची थी, उन लोगों का ख्याल था, आयु के बढ़ने और कारोबार के बन्धन में फंसने से मनुष्य स्वभावतः गम्भीर हो ही जाता है ।

इसके अतिरिक्त जहां तक घर के भीतर का सवाल था, जयदेव और माला में परस्पर आकर्षण का कोई चिन्ह शेष न रहा । प्रेमालाप, सलाह-मशविरा, एक साथ खाना, उठना-बैठना सब समाप्त हो गया । आने-जाने वाले लोगों के सम्मुख वह माला से किसी प्रकार का खिचाव प्रकट न होने देने के लिये विवश था ।

माला इस सर्दमोहरी को उपेक्षा और अन्याय समझती थी पर उसे सह जाने के अतिरिक्त उपाय न था । यदि किसी दिन जयदेव उस पर अस्तित्व का अभियोग लगाने का साहस करता तो वह चुप रह कर केवल अपने रक्त से उस कलंक को धो डालती । जयदेव ऐसा साहस कभी कर न सका, कायरता से हो या औचित्य के विचार से हो । घर पर माला मुरझाये हुये बासी गुलाब की सी रहती । दिल के बोझ को हल्का करने का केवल एक ही उपाय था, वह सखी-सहेलियो में जा दिल बहलाने का यत्न करती ।

मई का महीना, नौ तारीख थी । रात प्रायः तीन पहर बीत चुकी थी । जयदेव ऊपर तीसरी मंज़िल की छत पर सो रहा था । माला का पलंग नीचे खुले आंगन में मौसी के पास था । समीप एक स्टूल पर बिजली का पंखा रखा था जो बन्द हो गया । गरमी अधिक मालूम होने से मौसी की नींद उचट गयी । कुछ अप्रिय गन्ध और चटकने-कड़कने का शब्द सुनकर मौसी ने नज़र उठाकर

देखा, जीने और दूसरी मंज़िल की खिड़कियों से आग की लपटें और धुयें के बादल उठ रहे थे। बिजली की करेंट से आग लग गयी थी। मौसी की चीख निकल गयी। माला उठ खड़ी हुई। नौकर को पुकारा गया। शोर मच गया। लोग इकट्ठे हो गये। पानी की बाल्टियां, गागरें और घड़े आग की ओर फेंके जाने लगे।

पुकार सुनकर जयदेव उठ खड़ा हुआ। उसे तुरन्त नीचे आ जाने के लिये कहा गया। जीने की कुछ ही सीढ़ियां उतर वह ऊपर लौट गया। जीने की छत और सीढ़ियों में सब जगह लकड़ी ही लगी होने से जीना बिलकुल ज्वालामय हो रहा था। ऊपर से नीचे उतर आना सम्भव न था। मकान के दोनों ओर गली, सामने सड़क और पीछे केवल एक मंज़िला मकान होने से किसी दूसरे मकान के रास्ते उतर आना भी सम्भव न था। लम्बी सीढ़ी आस-पास कहीं न थी। इस ज़माने में लाहौर जैसे शहर में, जहां घर-घर पानी के नल लगे हों, बिना ज़रूरत लम्बी रस्सी भी कोई क्यों रखेगा?

भय-त्रस्त लोग तमाशा देख रहे थे। झटपट तीन-चार पगड़ियां और साड़ियां बांध कर रस्सियां तैयार हो गयीं परन्तु रस्सी को तिमंज़िले की छत तक पहुंचाने का उपाय न था। यदि जीने से ऊपर जाना सम्भव होता, जयदेव ही नीचे उतर आ सकता था। जवानी के जोश में नौकर पगड़ियों की बनी रस्सी ले कुछ सीढ़ियां चढ़ा—पर लौट आया। दो-तीन और नौजवानों ने भी आज-माइश की पर मुंह की खाकर लौट आये। आग बुझाने के इंजन को टेलीफ़ोन किया जा रहा था। वह अभी तक पहुंच न पाया था।

किसी से कुछ न कह साड़ियां जोड़ कर बनायी एक रस्सी को ले माला झपट कर जीने की ओर चली। उसे रोकने के लिये लोग आगे बढ़े, इतने में वह धुयें के घने बादलों में छिप गयी।

आशा-निराशा की लहरों पर उतराते हुये लोग मुंह बाये ऊपर की ओर देख रहे थे। किसी ने मुंह से कुछ न कहा पर सभी समझ रहे थे कि एक के बजाय दो जानें गयीं। जितनी देर में पहले साहस कर ऊपर जाने वाले लौट आये थे उससे चौगुनी देर हो गयी परन्तु माला न लौटी।

बहुत ऊंचे स्वर में घण्टी बजाते हुये फ़ायर-ब्रिगेड आ पहुंचा। फ़ायर-ब्रिगेड ने आते ही अपनी सीढ़ी लगा जयदेव को नीचे उतारा और जल की डबल पिचकारियों से मकान को नहला दिया। आंगन राख, कोयले और अधजले लकड़ी के टुकड़ों से भर गया। जीने में एक स्त्री के होने की सूचना के कारण

फायर-ब्रिगेड ने और भी जल्दी की परन्तु वहां से शरीर के एक जले हुये अंश के अतिरिक्त और कुछ न मिला ।

अपने जले मकान को छोड़ जयदेव एक पड़ोसी सज्जन के यहां जरूरी सामान लेकर ठहर गया । माला के अवशिष्ट शारीरिक चिन्हों के प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा करते समय शोक और अभिमान के मिश्रण ने उसे एक नशे की-सी हालत में कर दिया । इस युग में माला के यों सती हो जाने से जयदेव के प्रति लोगों की श्रद्धा और सहानुभूति का ज्वार उमड़ पड़ा । सहानुभूति प्रकट करने वालों का अन्त न था । जिन लोगों ने माला के आचरण के सम्बन्ध में कनखियों से इशारे कर गन्द फैलाया था, वे उन सब बातों को ऐसे भूल गये मानों वह प्रसंग कभी था ही नहीं ।

जयदेव के जीवन से शारीरिक रूप में लुप्त हो माला ने उस पर और भी अधिक व्यापक प्रभुत्व पा लिया । वह दिवंगत माला प्रथम प्रणय की माला की अपेक्षा भी कहीं अधिक·· कहीं अधिक प्रिय हो गई । जयदेव को सूझ न पड़ता था, माला के बिना वह किस प्रकार जीवित रह सकेगा ।

उसका हृदय शून्य हो गया था । जो कुछ अनुभूति शेष थी उस से, जिस सम्मान की पात्र माला थी, उसे अपने सिर पर ओढ़ाया जाता देख लज्जा से उसका मन दबा जा रहा था । उपेक्षा का जो व्यवहार उसने माला के प्रति किया था, उसकी स्मृति से कलेजे को फाड़ डालने की इच्छा होती थी । माला के अभाव में संसार में जीवित रहना उसे घोर विश्वासघात और महापाप मालूम होने लगा । वह अपनी दृष्टि में संसार का सब से नीच और जघन्य व्यक्ति हो रहा था ।

मेज़ पर फ्रेम में माला की एक फोटो खड़ी थी । उसके सम्मुख कुछ कागज़ पड़े थे । जयदेव ने नेत्र मूंद अपना सिर माला के चरणों में रख दिया । कितनी देर तक वह यों बैठा रहा, इसकी उसे कुछ खबर न थी । उसकी आंखों से बहुत सा जल मेज़ पर एकत्र हो बिजली के प्रकाश में चमक रहा था, उसी में माला की तसवीर भी प्रतिबिम्बित हो रही थी । उसे अनुभव हो रहा था, आकाश में बैठी माला उसके आंसुओं को देखकर मुस्करा रही है । उसने सिर उठाया । उसकी पलकों से आंसू टपक रहे थे । उस एकांन्त में उन्हें पोंछने की जरूरत न थी, उन्हें पोंछा भी नहीं जा सकता ।

रात के साढ़े तीन बज चुके थे पर नींद का कहीं पता न था। शरीर थकावट से चूर था इसलिये वह शरीर को सीधा करने के लिये पलंग की ओर झुका। तीन दिन से उसने अपनी कोई चिट्ठी-पत्री न खोली थी। मकान में आग लग जाने के दिन से चौदह चिट्ठियां जमा हो गई थीं। इतने समय में उसे समवेदना के इतने तार मिले और बैठने आने वालों ने उसे इतना अधिक घेर रखा था कि चिट्ठियों की ओर ध्यान देने का समय ही न था। लेटकर वह उन लिफाफों को देखने लगा।

पहिला लिफाफा माला के लिये था—श्रीमती माला देवी, राणा गली, लाहौर।' बांई ओर कोने में भेजने वाले का नाम लिखा था—'लिलि'।

आरम्भ में माला और जयदेव को जो पत्र आते थे, दोनों मिलकर साथ-साथ पढ़ते। जयदेव के पत्र माला और माला के पत्र जयदेव जरूर पढ़ता। उस समय वे एक प्राण दो शरीर थे परन्तु बरस भर में वे अदृश्य सीमाओं से बंध कर अलग-अलग हो चुके थे। जहां बातचीत न हो, वहां एक दूसरे के पत्र पढ़ने का सवाल ही क्या ? यदि दूसरे का पत्र हाथ में पड़ जाता तो नौकर के हाथ तुरन्त भिजवा दिया जाता।

आज माला के अभाव में उसके नाम का पत्र पा जयदेव की आंखों के सामने पिछली बातें फिर गईं। आज इस पत्र को बिना पढ़े ही वह किस के पास भेज सकता था ? उसने मोहर देखी। लिफाफा नौ तारीख को हीरामंडी से पोस्ट किया गया था और दस तारीख सुबह डाकिया मकान जल जाने के बाद इसे दे गया था।

माला की इस सहेली लिलि को वह क्या उत्तर देगा ? बहुत भाव से उसने लिफाफा खोला। पत्र में लिखा था—

"मेरी मलका, चुम्बन। कल जैसा दिन दुश्मन की किस्मत में भी न आये। कितने अरमान से मैं नैना के यहां गया था और विषाद का कैसा बोझ लेकर मकान को लौटा। सिवाय नमस्ते और कुशल पूछने के एक शब्द भी तुम से न कह सका। नैना के यहां चाय खतम कर तुम्हें साथ ले जाकर जरा घूम आने के लिये एक मित्र से कार मांग लाया था परन्तु विभा तुम्हें बरजोरी साथ पकड़ कर ले गई। उस समय जो विवश दृष्टि तुमने मेरी ओर डाली, वह अब तक मेरे हृदय में बाण के समान चुभ रही है। कल तुम अवश्य-अवश्य शाम को पांच बजे विभा के यहां आना। यदि तुम न आओगी तो मुझे तुम्हारे यहां आना ही होगा और उसमें कुसूर होगा तुम्हारा—मन्नू।"

उसका शोक से हृदय अवसन्न रह गया। इससे किसी हल्की चोट को वह अनुभव ही न कर सकता था। उस चोट ने उसे फिर एक दफे विवेक के लायक बना दिया। उसके लिये माला के अपने प्राण दे देने की बात उसके सम्मुख थी और उसके साथ ही अपवाद और अस्तित्व का यह अकाट्य प्रमाण उसके हाथ में मौजूद था।

तो क्या मुझे प्राण-पन से प्यार करती हुई भी वह दूसरे के प्रति अनुरक्त थी ? उसने अपने प्राण मेरे लिये प्रेम से नहीं बल्कि सामाजिक कर्तव्य समझ कर दिये ! जय का सिर चकरा रहा था।

इस उधेड़बुन में उसकी संज्ञा और अनुभूति भावुकता से हट कर विवेक की ओर चली गयी। माला की मृत्यु से जीवन को असम्भव समझने का भाव उसके मन से दूर हो गया। फिर ख्याल आया—माला के हृदय में उसके प्रति अनुराग की जो कमी हो गयी थी, उसका कारण शायद उसकी अपनी ही न्यूनता थी। माला ने उसके प्रति अशिष्ट व्यवहार कुछ नहीं किया। हां मन्नन के प्रति माला के अनुराग से उसका अपमान अवश्य था।

दोनों हाथ सिर के नीचे रखे वह निर्निमेष पड़ा था। उसे मालूम हुआ, कागज़ के पुर्जे ने माला को सतीत्व के ऊंचे, आभामय लोक से गिरा दिया।

वह पत्र को उठा कर उसकी ओर देखने लगा। उस समय वियोग के दुख की अपेक्षा अपमान का दाह ही उग्र हो रहा था। एक बड़े भारी आघात की आशंका से उसकी अन्तरात्मा सिहर उठी। समीप के किसी मिल से सुबह चार बजे के बिगुल ने बज कर उसे नया दिन चढ़ने की सूचना दी। वह फुर्ती से उठा, पत्र की बत्ती बना उसने दांतों में दबा ली और माचिस की एक सीख खींच बत्ती के एक छोर पर लगा दी।

कागज़ से एक निर्बल सी लपट उठने लगी। ज्वाला का प्रतिबिम्ब उसकी आंखों की पुतलियों में नाच रहा था। उसे खयाल आया—माला की पहली चिता जली थी उस समय जब मन्नन बीच में आया, यह उसकी तीसरी चिता जल रही थी।

प्रायश्चित

पूज्य पिता जी, श्री चरणों में प्रणाम !

मैं अपने घोर अपराध का दण्ड स्वयं ही भुगत रही हूं इसलिये आशा करती हूं कि आप और समाज मुझे क्षमा करेंगे। मेरे मन और आत्मा पर पाप की छाया किस प्रकार पड़ी; किस तरह पाप और वासना के प्रभाव को मैंने ग्रहण किया, वह मैं समझ नहीं पायी हूं परन्तु पाप की ओर मेरी प्रवृत्ति हुई, मेरे मन में वासना का अंकुर उपजा और उस ओर कदम रख मैंने अनुचित आचरण किया। आपकी सब आशाओं को मैंने मिट्टी कर, अपने और आपके मुंह पर अपने ही हाथों कालिख पोत दी। इस अवस्था में चुपचाप इस संसार से विदा ले, इस असफल जीवन को समाप्त कर, पाप लुप्त शरीर को जीर्ण वस्त्रों की तरह छोड़ मैं परम पिता परमात्मा की असीम दया में विश्वास कर यह प्रार्थना करती हूं।

हे अन्तर्यामी, दयामय विभो ! मेरी निर्बलता को क्षमा कीजिये और फिर मुझे एक बार नर शरीर का दान दे इस योग्य बनाइये कि मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर अपने जीवन को वेदोक्त धर्म के प्रचार में लगा कर हे भगवन, आप की आज्ञा का पालन कर सकूं।

अपनी निर्बलताओं के कारण वासनाओं की ओर प्रवृत्ति होने से मेरा मन और इन्द्रिय-लोलुपता से मेरा शरीर अपवित्र होकर मैं अब, हे परम पिता, आप के सत्य, अनादि और अनन्त ज्ञान का संसार में प्रचार करने के अयोग्य हो गयी हूं इसलिये आत्महत्या के घोर अपराध की शरण ले रही हूं।

हे प्रभु ! यद्यपि आत्महत्या आपकी आज्ञा के विरुद्ध है परन्तु यह अपवित्र शरीर आपकी आज्ञाओं के पालन के अयोग्य हो गया है। अब इस शरीर को व्यर्थ धारण कर संसार में एक घृणित जीव की भांति रहने से क्या लाभ !

हे पूर्ण ब्रह्म, आपकी इस अधम पुत्री की, आपके चरणों में नत होकर यही प्रार्थना है कि इसकी भूल को क्षमा कर अपनी सेवा का अवसर प्रदान करें। आप करुणा के सागर हैं, आपकी असीम दया के लिये हे जगन्नियन्ता, कुछ भी कठिन नहीं। हे करुणामय, मुझ से जो अपराध बन पड़ा है, उससे मेरी और दूसरी और ब्रह्मचारिणी बहनों को बचाइये। आप अपनी अपरिमेय शक्ति से उनके हृदय में ज्ञान और वल का संचार कीजिये ताकि वे पाप और वासना की प्रवृत्ति का दमन कर ब्रह्मचर्य का पालन कर सकें और अपने जीवन को सब सत्य विद्याओं के आदि मूल वेदोक्त ज्ञान के प्रचार से सफल बना सकें।

पिता जी, आप ने अपनी शक्ति भर मुझे ब्रह्मचर्य और सदाचार के मार्ग पर चलाने का पूरा यत्न किया पर न जाने कैसे मेरे मन में निर्बलता प्रवेश कर गयी। धर्मशास्त्र में कहा गया है—दस इन्द्रियां अश्व हैं और मन सारथी परन्तु नर-नारी के दुर्भाग्य से सबसे पहले यह सारथी ही विपथगामी होकर विद्रोही हो उठता है। इन्द्रिय रूपी अश्वों को सुमार्ग पर न चला कर दायें-बायें हांकने लगता है। घोड़े वासनाओं की चट्टानों से टकरा कर ज़ख्मी हो जाते हैं। यह शरीर रूपी रथ, जो सत्य ज्ञान के भण्डार के अमूल्य रत्न को लेकर, मोक्ष के मार्ग पर चलने के लिये परम पिता द्वारा इस संसार में भेजा गया है, चकना-चूर हो जाता है।

ऐसा क्यों होता है ? इसका कारण है वेदों के आदेश की उपेक्षा करना। बाल-ब्रह्मचारी भगवान दयानन्द सरस्वती ने हमें वह मार्ग दिखा दिया है परन्तु हम वासनाओं से आकर्षित हो भटक जाते हैं, मार्ग भूल जाते हैं। पूज्य पिता जी, मैंने मां का सुख जाना ही नहीं। वह मेरे होश संभालने से पूर्व ही परम-पिता की करुणामयी गोद में जा चुकी थी। आप ने ही माता का भी स्थान लेकर, पाल-पोस कर, कष्ट सहन कर यह दुर्लभ शरीर मुझे प्रदान किया परन्तु हा दुर्भाग्य, मैंने उसकी कदर न की। आपने मुझे ब्रह्मचर्य के सत्य मार्ग पर चलाने के लिये क्या नहीं किया ? वासनाओं से बचाने के लिये क्या नहीं किया ? बचपन में सब प्रकार के कुसंग से बचाया। पांच वर्ष की आयु से ही मुझे पवित्र वेद मंत्र कण्ठ कराये, नीति और सदाचार के श्लोक भी याद करा दिये। दोनों समय अपने पास बैठा कर संध्या और अग्निहोत्र भी कराया। बचपन में सदा मुझे मोटे और सादे वस्त्र पहिनाये। शौकीनी की प्रवृत्ति से बचाने के लिये मेरे सिर के बाल भी कटा दिये। पैरों में जूता या चप्पल भी, जैसा कि ब्रह्मचारियों को उचित है, नहीं पहिरने दिया। विवाह आदि के बुरा प्रभाव डालने वाले

दृश्यों, नाटक, सिनेमा, मेले-तमाशे सब से मुझे बचाया और छः वर्ष की आयु में कन्या गुरुकुल में प्रविष्ट करा दिया, जिसे महर्षि की आज्ञानुसार दयालु वैदिक धर्मियों ने स्थापित किया है और जहां ब्रह्मचर्य पालन तथा वेदोक्त शिक्षा का प्रबन्ध है। आज मेरी आयु साढ़े चौदह वर्ष की है, सब प्रकार से उचित वातावरण पाकर भी मैं क्यों पथ-भ्रष्ट हो गयी ? हाय दुर्भाग्य !

इसका कुछ उत्तरदायित्व दूसरों पर भी है। नर-नारी के मन को निर्बलता से बचाने के लिये ही वेदों में बालक और बालिकाओं के लिये गुरुकुलों की स्थापना का उपदेश दिया है और उन्हें इस प्रकार के अनैतिक और वासनामय प्रभावों से बचाने का आदेश दिया गया है परन्तु मैं अपने उदाहरण से वैदिक धर्मावलम्बी महानुभावों को यह बता देना चाहती हूं कि कलियुग के इन गुरु-कुलों का प्रबन्ध सन्तोषजनक नहीं। जैसे मुझ पर वासना का प्रभाव पड़ा, वैसे ही दूसरी ब्रह्मचारिणी बहिनों के मन में भी वासना की प्रवृत्ति जाग उठ सकती है। इसका उपाय होना चाहिये। ऐसा न होने से कन्या गुरुकुलों का उद्देश्य सफल न होगा और महर्षि की आत्मा क्लेपित होगी।

वेदों की आज्ञा ब्रह्मचारिणियों को गृहस्थों की संगति से बचाने की है। फिर क्यों गुरुकुलों में गृहस्थी की शौकीनी क प्रभाव को पहुंचने दिया जाता है ? ब्रह्मचारिणियों को गरमी की छुट्टियों में नगरों में जाने की इजाज़त क्यों दी जाती है ? सात वर्ष गुरुकुल में रहने के बाद पिता जी मुझे एक दफे घर लाये। उसका मुझ पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा। जो ब्रह्मचारिणियां प्रति वर्ष दो मास के लिये गृहस्थों में जीवन बिता आती हैं, उन पर कितना प्रभाव पड़ता होगा ? वास्तव में बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। बहुत हद तक वे ही शौकीन, विलास और वासना की मारात्मक बीमारी को गुरुकुलों में पहुंचाती हैं। जो लड़कियां नगरों में छुट्टियां बिता कर आती हैं वे प्रायः सुगन्धित तेल, साबुन, चेहरे पर लगाने का क्रीम, पाउडर आदि का ज़िक्र दूसरी लड़कियों से करती रहती हैं। महीन कपड़ों, रेशमी साड़ियों, आभूषणों, ऊंची एड़ी के जूतों और मोज़ों की प्रशंसा करती हैं। दो-तीन ने यहां तक स्वीकार किया कि उन्होंने घर जाकर, तीन किनारे की धोती, मोज़े, गुरगाबी पहरे, सिर में सुगन्धित तेल लगाया, टेढ़ी मांग निकाली, क्रीम-पाउडर का व्यवहार किया, सुरमा लगाया और इसमें कोई दोष नहीं।

इसमें दोष नहीं तो दोष है किस में ? ब्रह्मचर्य का ही पालन जब हमने नहीं किया, तो शेष रह क्या गया ? कुछ लड़कियों ने यहां तक स्वीकार किया

कि उन्होंने नवयुवकों के साथ बैठ कर चाय पी और सिनेमा देखा। वे गुरुकुल की शिक्षा समाप्त कर व्याह करना चाहती हैं। मैं पूछती हूं, क्या महर्षि का उद्देश्य यही था ? मैं तो आज अपने अपराध की गुरुता को अनुभव कर रही हूं और संसार से बिदा लेती हूं परन्तु समाज को सावधान किये जाती हूं कि वह बेखबर न रहें। गुरुकुल में ब्रह्मचर्य का जैसा पालन होना चाहिये, वैसा नहीं हो रहा। वहां भी शौकीनी की बीमारी पहुंच रही है। लड़कियां जान-बूझ कर बालों को इतना ढीला बांधती हैं कि कानों पर घूम जायं। जान-बूझ कर एक-आध लट छोड़ देती हैं ताकि सामने लटक जाय। जान-बूझ कर कुर्ते की आस्तीनों को कोहनी से ऊपर फाड़ देती हैं ताकि बांह ब्लाउज की तरह दीखे। धोती का आंचल जान-बूझ कर सिर से गिरा देती हैं। इन सब बातों की मनाही है। ऐसा करने से उचित दण्ड भी मिलता है परन्तु यह इस बात का प्रमाण है कि शौकीनी और विलास की इच्छा वहां पहुंच ही जाती है, वह दुर्दमनीय है। वे छिपा-छिपा कर कुरतों के किनारों पर सोजनकारी करने का यत्न करती हैं। एक लड़की ने चालाकी से धोती के किनारे पर ऐसे स्याही गिरा ली कि बेल-सी मालूम होने लगी। मुझे स्वयं इस बात की इच्छा हुई। गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों को क्यों ऐसे कुसंस्कारपूर्ण दृश्यों को देखने दिया जाता है ? जो आध्यापिकायें पढ़ाने जाती हैं, वे क्यों महीन, इस्त्री किये कपड़े पहिने रहती हैं ? क्यों किनारेदार साड़ियां पहिनती हैं ? क्यों चश्मा लगाती हैं ? क्यों अंगूठी पहनती हैं ? क्यों ब्लाउज और जम्पर पहनती हैं ? जूड़ा बांधती हैं ? चप्पल या गुरगावी पहनती हैं ? और फिर क्यों हमें अश्लील पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं ? कहने को पंचतंत्र तथा दूसरी पुस्तकों में से अश्लील प्रकरण निकाल दिये जाते हैं परन्तु क्या दूसरी पुस्तकों में अश्लीलता नहीं भरी हुई ? महर्षि ने ऐसी पुस्तकें ब्रह्मचारिणियों के लिये वर्जित की हैं। रघुवंश और शन्कुन्तला नाटक, विशेष-विशेष स्थलों को निकाल कर पढ़ाये जाते हैं परन्तु क्या उन छिपाये गये अंशों की इच्छा हमें नहीं होती ? कोई भी पूर्ण संस्करण हमें मिलने पर हम सब से पहले वर्जित को ही पढ़ने का यत्न करती हैं। क्या बाल्मीकी रामायण में अश्लीलता नहीं ? उस में क्या नहीं लिखा—"व्यूढ़ोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजा···।" कुमारी ब्रह्मचारिणियों को यह जानने की क्या आवश्यकता है कि पुरुष का शरीर सुन्दर और आकर्षक होता है ! हमें यह क्यों बताया जाता है कि दुष्यन्त शकुन्तला के रूप पर मोहित हो गया था। यह जान कर यह भाव उठना क्या स्वाभाविक नहीं कि किसी दिन कोई पुरुष हमारे रूप पर भी मोहित होगा ? यह सौंदर्य

की चर्चा ब्रह्मचारिणियों को क्यों सुनाई जाती है ? परमपिता के सिवा संसार में सुन्दर कौन है ?

प्राकृतिक सौंदर्य का आकर्षण भी ब्रह्मचर्य के लिये घातक है। आकर्षण तो उस में भी है। गुरुकुल में फुलवाड़ी क्यों लगाई जाती है और फूल तोड़ कर हार बना कर पहिनने की इच्छा होने पर या बालों में फूल खोंसने की इच्छा होने पर हमें बुरा क्यों कहा जाता है ? वार्षिक उत्सव के समय सुगन्ध लगाये, शृंगार किये नगर की स्त्रियों को बुला कर हमारे मन में जलन क्यों पैदा की जाती है ? हमारी अध्यापिकाओं के गाल केले के पत्ते की तरह चिकने और मुलायम क्यों रहते हैं ? ब्रह्मचारिणियों का आश्रम सृष्टि के उस कोने में होना चाहिये जहां इन वासनामय प्रभावों की पहुंच न हो पर वह स्थान है कहां ?

इन फूलों पर तितलियों को मण्डराने क्यों दिया जाता है ? इन पक्षियों को गुरुकुल में व्यभिचार क्यों करने दिया जाता है ? क्या इस का बुरा प्रभाव ब्रह्मचारिणियों के मन और मस्तिष्क पर नहीं पड़ता ? हमें पुरुषों के चित्र क्यों देखने दिये जाते हैं ? हमें यह बताने की क्या जरूरत है कि पुरुष भी संसार में होते हैं और स्त्री से उस का विवाह होता है ? यही सब रोगों की जड़ है। माना कि दर्पण हमें नहीं दिया जाता परन्तु लोटे के जल में मुख की छाया क्यों पड़ जाती है ? हमें यह क्यों बताया जाता है, केश लम्बे और लोचन विशाल अच्छे होते हैं। यह चीज़ें अच्छी क्यों होती हैं ? यह केवल शृंगार की भावना है, विलासिता है, मन का अब्रह्मचर्य है, पतन है।

मैंने क्या किया ? पाप की अग्नि से झुलस कर परम पिता की शांतिमय गोद में पुनर्जन्म की अभिलाषा से मुझे आश्रय क्यों लेना पड़ा ? वेद के सत्यज्ञान का प्रचार क्या ऐसी ब्रह्मचारिणियां कर सकेंगी जिन के मन में वासना और अब्रह्मचर्य की भावना घर कर चुकी है ?

गुरुकुल के ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुये ही मेरे मन में विलासिता की भावना उमड़ चुकी थी परन्तु अधिष्ठात्रियों के मुख से सदुपदेश सुन कर मैं उस का दमन करती रही। आखिर मेरे दुर्भाग्य से वह दिन आया जब पिता जी आप मुझे इस वर्ष बहुत कमजोर हो जाने के कारण दो मास की छुट्टी में घर ले आये। मैं अमृतसर आते ही चकाचौंध हो गई। कुछ सोचने या विचारने की शक्ति मुझ में न रही। शृंगार से लदी हुई और सुगन्ध उड़ाती हुई इन सब स्त्रियों को देख मैं यह याद न रख सकी कि मेरे जीवन का पवित्र आदर्श क्या था।

इस विलास की नगरी में, विलासिता की जीवित पुतलियों के बीच आ मैं सब कुछ भूल गयी। त्याग के बलपूर्वक बैठाये हुये आदर्श मेरे मन से उखड़ गये। पिता जी, आपने घर में कोई और स्त्री न होने से यह उचित समझा कि ताऊ जी के यहां लड़कियों और स्त्रियों के बीच मुझे रखा जाय। यदि आप अकेले अपने पास रखते तो शायद मेरे लिये वही अच्छा होता। ताई जी, भाभी मृणाल और पद्मा के बीच आकर मैं कैसी लगती थी ?···ये लोग आपस में मुझे जंगली बकरी कह कर पुकारती थीं।

यहां आकर मैं केवल देखती ही रही, सोचा, या समझा मैंने कुछ भी नहीं। यहां आकर मैंने देखा ताऊ जी के सिवा संध्या कोई नहीं करता। हवन ताऊजी भी केवल एक ही समय करते हैं। संध्या समय हवन मैं अकेले ही करती थी। सोलह आश्विन की संध्या को मैं हवन न कर सकी, बातें ही सुनती रही और भोजन बिना हवन किये ही कर लिया। सत्रह को प्रातःकाल मृणाल ने मुझ से 'दरबार-साहिब' घूमने चलने के लिये कहा। वह मुझे ब्रह्मचारिणी के वेश में साथ ले जाने के लिये तैयार न थी। उसके कहने से मैंने रेशमी साड़ी पहनी, ब्लाउज पहना, ऊंची एड़ी का जूता पहना। बाज़ार में जगह-जगह आदमकद आइनों में जब मुझे अपनी आकृति दिखायी देती थी, मैं आनन्द विह्वल हो मुस्करा देती। मेरा मन भटक सा गया। घर लौट कर मृणाल के वह कपड़े उतारने को मेरा मन न हुआ।

मैं उसकी शृंगार की आलमारी की चीज़ों को देखने लगी। उसमें पाउडर था, क्रीम थी, सुगन्ध थी, होंठ रंगने का रंग और न जाने कई और चीजें जिन्हें मैं पहचान न सकी, मौजूद थीं। छज्जे से मैंने देखा एक नवयुवती मृणाल की ही तरह शृंगार किये हुये गली में से चली जा रही थी। उसके साथ एक नवयुवक था। दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े चले जा रहे थे। मन में इच्छा हुई, दौड़ कर जाऊं और उस नवयुवती को हटा कर उसका स्थान ले लूं।

मैं लौट कर मृणाल की आलमारी के सामने आ खड़ी हुई। ज्ञान की आंखों पर अज्ञान की पट्टी बंध चुकी थी, मन पाप-पंक में फंस चुका था। मैंने अपने माथे पर बेंदी और होंठों पर लाल बत्ती लगायी। सिर के बाल काढ़कर टेढ़ी मांग संवारी और सुगन्ध लगायी। फिर गली में जाने वाली औरत की तरह आंचल संवार, कमर पर हाथ रख मैंने आइने में देखा। उस समय मेरा मन पाप की सीमा पर पहुंच चुका था—इस अन्तिम समय मैं सत्य को छिपाने का यत्न न करूंगी—मन में इच्छा हुई कि मेरा ब्याह हो जाय, इसी समय हो जाय,

मैं गुरुकुल न जाऊं। मैं छज्जे पर आकर खड़ी हो गयी। सामने से जो भी अच्छे कपड़े पहने युवक जाता दिखायी देता, इच्छा होती उसी से मेरा विवाह हो जाय।

उसी समय छज्जे पर आहट पा मैंने घूम कर देखा, पिता जी आप खड़े थे। उसी अवस्था में बहुत देर तक घृणा और आश्चर्य से आप मुझे देखते रहे और बिना कुछ कहे ही लौट गये। मैं लज्जा और आत्मग्लानि से पसीना-पसीना हो गयी।

पूज्य पिता जी, उस समय मुझे ज्ञान हुआ कि मैंने क्या किया है? बहुत देर तक मैं अपने पाप आचरण के लिये पश्चाताप करती रही। अब मैंने समझा कि अपने ब्रह्मचर्य को मैंने वासना की आग में झोंक दिया है, मैंने वैदिक शिक्षा और गुरुकुल को कलंकित कर दिया है। आपकी आशाओं को मटियामेट किया, आपको कलंकित किया। मेरे जीवन का जो उद्देश्य ब्रह्मचर्य पूर्वक वैदिक शिक्षा ग्रहण कर वेद के सत्य ज्ञान का प्रचार करना था, उस उद्देश्य के योग्य मेरा शरीर नहीं रहा। अब इस कलंकमय शरीर को बचाकर रखने से क्या लाभ? कुमारिल भट्ट ने अपने पाप का प्रायश्चित तुषों की अग्नि में झुलस कर किया था क्योंकि उसने बौद्ध धर्म के आचार्यों को, जो उसके ज्ञान के पिता थे, धोखा दिया था। पिता जी, मैंने आपको धोखा दिया है इसलिये अपने पाप का प्रायश्चित प्राणान्त द्वारा ही करूंगी। मेरी आत्मा प्रायश्चित द्वारा निर्मल हो जायगी परन्तु अपने इस कलंकित शरीर और मन का मैं अन्त कर रही हूं। अब कुछ ही क्षणों की देर है। आप इस कलंकिनी, विश्वासघातिनी का मुख अब जीवित अवस्था में नहीं देख सकेंगे। मैंने विष खा लिया है।

और कोई विष यहां न मिल सकने के कारण मैंने शहद और घी मिलाकर खा लिया है।* मुझे मृत्यु से कुछ भय नहीं। मुझे कुछ पीड़ा अनुभव नहीं हो रही और न मैं पीड़ा से डरती हूं। मुझे दुःख है तो केवल इस बात का कि मैं जीवन के पवित्र मार्ग से विचलित हो गयी। परमपिता परमात्मा मुझे उस जन्म में सद्बुद्धि प्रदान करें, ताकि मैं उनके ज्ञान की ज्योति का, जो उन्होंने वेदों द्वारा प्राणि-मात्र के उपकार के लिये सृष्टि के आरम्भ में प्रदान की है, संसार भर में प्रचार कर सकूं। हे दयामय पिता-परमात्मा, आप मेरे पिता जी को

---

* कुछ लोगों का विश्वास है, घी और शहद बराबर मात्रा में मिला कर खाने से वह विष का प्रभाव रखता है।

मुझ कलंकिनी द्वारा दिये जाने वाले सन्तान वियोग को सहन करने की शक्ति दीजिये। मैं इस कलुषित जीवन द्वारा उन्हें लज्जित नहीं करना चाहती।

लेकिन जाते समय मैं आर्य पुरुषों से यह प्रार्थना करके जाना चाहती हूं—यदि आप वास्तव में ब्रह्मचारिणियों द्वारा जग का कल्याण चाहते हैं, तो उनके आश्रम को विलासिता और शृंगार के सभी प्रकार के आकर्षणों से बचा कर रखिये, ताकि दूसरी बहनें मेरी तरह पथभ्रष्ट न हो जायें। ब्रह्मचर्याश्रम ऐसी जगह होने चाहिये जहां स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध या विलास वासना की भावना की पहुंच किसी भी प्रकार न हो सके। लेकिन ऐसा स्थान क्या सृष्टि भर में कहीं भी मिल सकेगा। फूल, तितलियां, मक्खियां, चिड़ियां, तोते, कबूतर यह कहां नहीं पहुंच सकेंगे ?

क्या ब्रह्मचर्याश्रम में रहने वाले जीवों को भी ब्रह्मचर्य की शिक्षा नहीं दी जा सकती ? यह सब उपकरण ब्रह्मचर्य के लिये घातक हैं। कण्व ऋषि के आश्रम में शकुन्तला पहिले ही प्रलोभन में क्यों फंस गयी ? अवश्य ही आश्रम निवासी विवाहित तपस्वियों और जीव-जन्तुओं की जीवनचर्या का प्रभाव उस पर पड़ा होगा। शकुन्तला का चरित्र कुछ आदर्श नहीं था फिर भी उसकी कोई निन्दा नहीं करता। क्यों वह वन्य पुष्पों से शृंगार करती थी ? क्यों दुष्यन्त को देखते ही उसके मन में विवाह-सम्बन्धी इच्छा उत्पन्न हुई ? क्या यह सब उचित था ?

उमा ने क्यों पति के लिये तपस्या की ? कौमार्य जीवन में पति की कामना मानसिक व्यभिचार है पर वे सब तो सदाचार का आदर्श मानी जाती हैं··· तो फिर मैं ही आदर्श से कैसे गिर गयी। मैं प्राण त्याग कर अपने पाप का प्रायश्चित कर रही हूं लेकिन अभी तक विष ने अपना प्रभाव नहीं दिखाया।

यह क्या; 'दरबार-साहिब' जाने वाली स्त्रियां शनैः-शनैः हरि कीर्तन करती हुई उठने लगीं ! क्या प्रातःकाल लोगों को अपना कलंकित मुख दिखाने के बाद ही, लज्जा और लांछना का बोझ सिर पर लाद कर ही मैं इस संसार से बिदा ले सकूंगी ? मृणाल और पद्मा के सामने, जो मुझे जंगली बकरी समझती हैं, मैं कैसे मुख दिखा सकूंगी ? वे भी कुमारी हैं, संसार की कल्पना में जितना शृंगार हो सकता है, वह सब वे करती हैं। उन्हें न लज्जा है, न आत्मग्लानि। उन्हें न कोई लज्जित करता है, न प्रतारणा देता है·····सब उन्हें प्यार करते हैं। वे अभिमान से सिर उठा कर चलती हैं।

पाप क्या मेरे ही लिये है; उनके लिये नहीं ?·· ···पिता जी, आपने मेरी ओर किस तिरस्कार की दृष्टि से देखा था ?·····क्या आप मृणाल और पद्मा को इस दृष्टि से देखते हैं ·····?

आंखें झपकने लगी हैं·····पिता परमात्मा मुझे अब अपनी करुणामय गोद में बुला रहे हैं·····। यह निद्रा नहीं, महानिद्रा है ·· ओ३म् तत्सत् !

हृदय

कई वर्ष से मैं अपने मित्रों को पहली जनवरी के दिन निमंत्रित किया करता हूं। कुछ 'नववर्ष' मनाने के लिये नहीं, नववर्ष तो मैं 'वैशाखी' से गिनता हूं। बस यों ही, फुर्सत और सुविधा के विचार से।

सब प्रबन्ध हो चुका था। निमंत्रण की रात का अन्त सिनेमा से करने का विचार था इसलिये 'रंगशाला' के मैनेजर को मैं एक दर्जन कुर्सियां सुरक्षित रखने के लिये टेलीफोन कर रहा था। एक बड़ा नामी चित्र 'कल्पना' उस रोज चलने वाला था। जगह सुरक्षित कर लेना ज़रूरी समझा। टेलीफोन का चोंगा (Mouth piece) नीचे रखा ही था कि प्रसादी ने एक तार का पीला लिफाफा हाथ में दिया। कुछ शंकित भाव से लिफाफा फाड़कर देखा—काठ मार गया।

बख्शी जी का तार था, कांगड़े से—

"मिस्टर खन्ना भयानक बीमार, तुरन्त पहुंचो।"

तार मेज़ पर रख दोनों हाथों से सिर थाम बैठ गया। क्या करूं और क्या नहीं? अपनी समझ को कोसा, किस मुहूर्त में खन्ना को कांगड़े भेज दिया था। क्या हो गया उसे? कौन बीमारी आ लगी? क्या किसी चट्टान से लुढ़क पड़ा या किसी भालू, चीते ने उसे फाड़ खाया?.....अस्तु जो भी होता, गये बिना चारा न था।

सोचा, बख्शी क्या कहते होंगे? उनके मत्थे यह अच्छी बला पड़ी। अगर जाता हूं तो कल पहली जनवरी को सब मित्र लोग क्या कहेंगे? कोई कहेगा, खूब मज़ाक किया और अगर कोई इसे अपमान समझ ले तो क्या आश्चर्य? और रुपये जो पानी में मिल गये सो अलग।

रानी को समझाया, मित्रों को सब बात समझा कर पहिले से ही निमंत्रण स्थगित करने की सूचना दे देना और जैसे हो; गये बिना तो चारा नहीं।

रानी ने कहा—"घबराओ मत, बख्शी जी को तार दे दो। वे खन्ना को भेज देंगे या खुद आकर छोड़ जायेंगे। वहां भला क्या इलाज होगा ? डाक्टर भी तो वहां मिलना मुश्किल है और यहां का यह सब काम बिगड़ जायगा।"

सुनकर मेरे तन बदन में आग लग गयी। बेबसी की हालत में जब कोई उल्टी दलील सुझाता है तो ऐसा ही होता है। झुंझलाकर कहा—"क्या उल्टी खोपड़ी की बात कहती हो ! अगर वह आ सकने लायक होता तो आ नहीं जाता ? और बख्शी क्या मेरे बाप का नौकर है जो उन्हें हुक्म दे दूं ! तुम्हारे ही कहने से तो मैंने उसे परिचय-पत्र देकर वहां भेजा और मुसीबत आ पड़ी तो उल्टा रास्ता दिखाती हो ?"

मेरे इस दोषारोपण में सचाई का अंश बहुत कम था परन्तु रानी उसे उदारता से सह गयी और बोली—"न हो मैं चली जाऊं ?"

स्त्रियों की पूर्ण स्वतंत्रता और समानता का पक्षपाती मैं ज़रूर हूं परन्तु जब वे अपने आपको पुरुषों की अपेक्षा भी अधिक चतुर समझने लगती हैं, तब क्रोध आ जाना स्वाभाविक है। भन्ना उठा परन्तु कुछ कह न सका।

पढ़ा है, रूस में पुराने समय विवाह के समय जब स्त्री पति को सौंपी जाती थी, एक चाबुक भी साथ में दिया जाता था। उसका ज़रूर कुछ मतलब रहा होगा। पुरुषों के अधिकार का वह स्वर्णयुग गया। अब तो पचास प्रतिशत काम स्त्री की आज्ञा से और शेष उसकी अनुमति से करने पड़ते हैं। सो दांत किट-किटाने के सिवा, वह भी 'नेपथ्य' में और कुछ चारा नहीं।

बड़े दिन की छुट्टियों से पहले प्रोफेसर खन्ना ने आकर मुझ से कहा—"इन छुट्टियों में मैं अपनी कविताओं की पुस्तक को समाप्त कर प्रकाशक को दे देना चाहता हूं। लाहौर के भीड़ भड़ाके में यह काम नहीं हो सकता। कोई एकान्त स्थान बताओ, जहां मैं इस काम को समाप्त कर सकूं।" इसी के फलस्वरूप, प्रोफेसर साहब को परिचय-पत्र देकर बख्शी जी के यहां कांगड़े भेज दिया और यह भी कह दिया कि पुराने कांगड़े का टूटा हुआ किला जैसा एकान्त और भावपूर्ण स्थान है, वैसे स्थान पृथ्वी पर अधिक नहीं। उसी सिलसिले में यह तार आ पहुंचा।

रात भर सफर कर सुबह मुंह-अंधेरे पठानकोट पहुंचा और वहां से पहिली मोटर में पहाड़ी-बर्फानी हवा से बिंधता हुआ प्रातः दस बजे कांगड़े पहुंच गया। शंका से धुकधुकाते हृदय से लम्बे-लम्बे कदम रखता हुआ मैं बख्शी जी की कोठी पर पहुंचा।

दफ्तर में कोई न था। सीधा भीतर चला गया। जिस कमरे में खन्ना के होने का अनुमान था, उसकी ओर ही चला। पलंग के एक ओर बख्शी जी और दूसरी तरफ सरकारी अस्पताल के डाक्टर कुर्सी पर बैठे थे। वे लोग मेरी प्रतीक्षा में थे।

खन्ना पलंग पर था। उसकी आंखें सजग खुली हुई, हां चेहरा कुछ पीला था। मानो उसने मुझे देख कर भी नहीं देखा। मैं कुछ न कह अंगीठी के समीप की कुर्सी पर जा बैठा। बख्शी जी ने मेरी ओर देख डाक्टर से कहा—"आप ही प्रोफेसर खन्ना के मित्र हैं।"

डाक्टर ने स्वीकृति सूचक भाव से सिर हिला दिया।

उसी समय खन्ना सहसा गा उठा—"पले···नीठड़ी···होयां !"

मैं चकित रह गया। खन्ना छत की ओर देख करुण परन्तु भर्राये हुये स्वर में गाने लगा—

"सिकन्दरे दीये धारे मुइय्ये !

पले नीठड़ी होयां, पले नीठड़ी होयां,

तेते परे-परेलड़िया मुइय्ये, मेरे पेइय्ये···!"

बड़ी लम्बी तान से, जैसे कांगड़े की पहाड़ियों में लम्बी तानों से लोग गाया करते हैं, वह गाने लगा। मैं हैरान था, इतनी जल्दी वह इस स्थान की बोली कैसे सीख पाया। गाना बीच में छोड़ खन्ना लिहाफ अलग फेंक, उठ कर भागने की चेष्टा करने लगा परन्तु डाक्टर और बख्शी जी पहिले से सतर्क थे। उन्होंने उसे दबोच लिया। दूसरी ओर मैंने थामा। वह फिर चुप हो लेटा रहा।

मालूम हुआ, प्रायः पिछले रोज़ बाद दुपहर से प्रबल सन्निपात के लक्षण दिखायी पड़ रहे हैं। रात भर उसकी यही अवस्था थी।

हुआ यह कि प्रोफेसर खन्ना नित्य अपनी कविताओं की पांडुलिपि ले इधर-उधर जंगलों में निकल जाया करते थे। एक रोज़ वह इस प्रकृति-पूजा में भटक गये और न जाने कहां-कहां मारे फिरे। आखिर एक पहाड़ी उन्हें बख्शी जी की कोठी पर छोड़ गया। उस दिन से प्रोफेसर साहिब लिखने-पढ़ने का काम कोठी पर ही करते, केवल सैर के लिये ही बाहर जाते और उस समय बख्शी जी का कोई आदमी उनके साथ हो लेता।

उनतीस दिसम्बर दुपहर के बाद अढ़ाई बजे की मोटर से खन्ना की पठानकोट लौटने की तैयारी थी। उस दिन प्रातःकाल आठ बजे उसने अन्तिम बार कांगड़े के पुराने किले को देखने की इच्छा प्रकट की। बख्शी जी का एक मुंशी

उसके साथ गया ।

आकाश में घने काले बादल उमड़ रहे थे । ऊंची चोटी पर किले के भग्नावशेष के चारों ओर पर्वत-श्रेणियां और चट्टानें अनन्त सागर की भांति दृष्टि की सीमा तक फैली हुई थीं । आकाश में क्षितिज से मेघ उमड़-उमड़ कर और पृथ्वी से पर्वत मालायें उठ-उठ कर एक साथ मिल गयी थीं । इस आंगन में कहीं-कहीं गहरी श्यामलता लिये वन-राशियां पहाड़ियों पर फैली थीं और जहां-तहां हल्की हरियाली लिये खेतों के टुकड़े बिछ गये थे । कहीं उभरी हुई पहाड़ियों के बीच से सूखी हुई पहाड़ी नदियों के मार्ग हलकी अनी की रेखा के समान दिखायी पड़ रहे थे । कहीं जल की पतली धारायें मेघों की छाया पड़ने से बहुत लम्बे-लम्बे काले नागों की भांति सो रही थीं ।

सुदूर नीचे पहाड़ी की तराई में प्रबल वेग से बहती हुई बाण-गंगा चट्टानों से टकरा कर, घनघोर शब्द कर रही थी परन्तु हवा इतनी तेज़ी से बह रही थी कि नदी का शब्द सुनाई न पड़ सकता था ।

तेज़ ठण्डी हवा, मेघावृत्त आकाश, उस पर बूंदाबूंदी होने लगी । सर्दी क्या थी, तीर सी बदन को पार किये जाती थी । एक गम्भीर गहरी उदासी चारों ओर छायी हुई । उसी दृश्य को खन्ना किले की एक टूटी हुई दीवार पर खड़े देख रहा था । भावोन्मेष से उसकी आंखें मूंदी जा रही थीं । खन्ना जैसे आदमी पर—जो काले बादल को देख आहें भरने लगे, इस दृश्य का क्या प्रभाव पड़ा होगा ?

इस दृश्य पर उसकी तरल दृष्टि तैर रही थी । तेज़ हवा से उसकी हैट उड़-उड़ जाती और वह उसे दबा-दबा कर रख रहा था । उसी समय नीचे कुछ दूर से करुण परन्तु सुरीली और स्पष्ट आवाज़ सुनायी दी । खन्ना ने उस ओर दृष्टि कर देखा; एक पहाड़िन किले के भीतर की खिल्ली ढलवां ज़मीन पर उगी लम्बी घास को हंसिये से काट रही है ।

वह सामने की ऊंची पर्वत श्रेणी की ओर देख हृदय हिला देने वाले स्वर में गा रही थी—

"सिकन्दरे दीये धारे मुइय्ये, पले नीठड़ी होयां, पले नीठड़ी होयां ।"

खन्ना बुत की तरह खड़ा उसे सुनता रहा । वह ज़रा चुप हुई । मुंशी की ओर घूम आर्द्र स्वर में खन्ना ने पूछा—"यह क्या गाती है ?"

मुंशी ने कहा—"साहब, यह अपने मायके जाने का गीत गाती है ।"

खन्ना ने कहा—"इसका मतलब बताओ ।"

मुंशी ने समझाया—"वह जो ऊंची पहाड़ियों का सिलसिला है, उसे पहाड़ी लोग 'सिकन्दर की धार' बोलते हैं। इस लड़की का मायका 'सिकन्दर की धार' की परली तरफ है। वह गाती है, 'सिकन्दरे दीये धारे पले नीठड़ी होया'—ओ सिकन्दर की धार, पल भर को तू नीची हो जा। मरी, तू पल भर को झुक जा!"

हवा का तेज झोंका आया और खन्ना की हैट उड़ कर यह गई, वह गई। मुंशी उधर झपटा परन्तु हैट हवा में उड़ते हुये सूखे पत्ते की भांति बहुत दूर वीहड़ में चली गई।

खन्ना ने उपेक्षा से कहा—"जाने दो, हां, वह क्या गाती है?"

इनने में औरत ने गाया—"तेते परे परेलड़िया मुइय्ये? मेरे पेइय्ये ओ···"

मुंशी ने कहा—"वह कहती है, 'तेते परे परेलड़िया मुइय्ये!' अरी तू मर गइ तेरी ओट में मेरे पेइय्ये (मेरे मायके) हैं। तू ज़रा नीची हो तो मैं उसे देख लूं।"

खन्ना चुपचाप, घास काटने की उलझन के कारण संगीत की उन टूटती हुई मधुर तानों को सुन रहा था। वर्षा तड़ातड़ उस के सिर पर पड़ रही थी और ओवरकोट पर से बहती नीचे चली जा रही जी। मुंशी ने अदब से अपना कम्बल उतारकर देना चाहा परन्तु खन्ना ने ध्यान न दिया।

मुंशी ने कहा—"साहब, इधर आड़ में हो जाइये, सर्दी ज्यादा है।" खन्ना ने सुना नहीं। उस के कान चातक के समान स्वाती बूंद की प्रतीक्षा में थे। वह पहाड़िन वर्षा में भीगती थी, घास काटती थी और जब तब टेर लगा देती थी।

"सिकन्दरे दीये धारे मुइय्ये!
पले नीठड़ी होयां, पले नीठड़ी होयां।
ओ तेते परे परेलड़िये मुइय्ये मेरे पेइय्ये।"

मुंशी के कई दफा टोकने पर खन्ना लौट चलने को तैयार हुआ। उस के कानों में अब भी पहाड़िन के गीत की गूंज थी परन्तु शरीर सर्दी से विजड़ित हो जाने के कारण कदम लड़खड़ा रहे थे।

प्रो० खन्ना के लौट आने पर बख्शी जी ने देखा, उस के कपड़े एकदम भीगे हुये हैं और होंठ सर्दी से नील पड़ गये हैं। फौरन गरम चाय लाने के लिये कहा गया और खन्ना कपड़े बदलने का प्रयत्न करने लगा परन्तु बीच में ही लड़खड़ा गया। उसे एक आराम कुर्सी पर टिका दिया गया। चाय आते-आते उस के दांत बंध गये।

प्राय: आध घण्टे में सरकारी अस्पताल के डाक्टर आ पहुंचे। डाक्टर ने निदान कर जब विषम सन्निपात हो जाने की बात कही तो बख्शी जी बहुत घबराये। मुझे तार द्वारा बुलाना उन्होंने आवश्यक समझा। रात भर खन्ना के हाथ पैर सहलाये गये। डाक्टर ने कई दफा सुइयां लगाई परन्तु कुछ न बना।

रानी ने सुना तो मटर के दानों से आंसू टपकाने लगी। बोली—"हाय बेचारा खन्ना !···जी, उस की कविताओं को मैं पुस्तक में उस की फोटो सहित छपवाऊंगी।"

मैंने कहा—"कविता की पुस्तक ! अब कहां रक्खी है, वह पुस्तक ? वह नहीं छप सकती।"

आंसू पोंछ रानी ने कहा—"नहीं लाओ, मुझे दे दो मैं छपवाऊंगी।"

"छपवाओगी !" मैंने कहा, "जो आदमी एक गीत के पीछे जान दे दे, उस की कविताओं से संसार का क्या भला होगा ? मैंने वह पाण्डुलिपि उस के शरीर के साथ ही विसर्जन कर दी।"

रानी ने वितृष्णा से मेरी ओर देख कर कहा—"हाय तुम बड़े हृदयहीन हो !"

उत्तर दिया—"हां यदि कविता लिखने और जाड़े की बरसात में जाड़ा खा सन्निपात सिर लेने से ही 'हृदय' होता है तो उस से मैं अवश्य हीन हूं।"

पराई

कार्तिक के दिन थे। वर्षा बीत चुकी थी। दोपहर के समय आधीरात की सी स्तब्धता छा रही थी परन्तु उसमें रात की लरज और डर न था।

पहाड़ों की ढलवानों पर खेती की जुताई हो रही थी। सुनहली धूप में घास से मढ़ी पहाड़ियां, पहाड़ों के पार्श्वों पर चीड़ों के जंगल, जुते-अधजुते धूसर खेत, मकानों की फूस और स्लेट की छतें सब चकाचौंध हो रही थीं। तलहटी में पानी की कलकल करती धार गली हुई चादी सी झिलमिला रही थी। जल जहां स्थिर था, शरद के आकाश की प्रतिछाया से ऐसा जान पड़ता था मानों शरद ऋतु की नीली साड़ी रंगने के लिये नील के कुण्ड भरे हैं।

पशु वृक्षों के नीचे बैठे संतोष से रौंथ कर रहे थे। स्त्रियां घर के आंगन में मक्का और धान को धूप दिखा रही थीं या बरसात के सीले कपड़ों को सुखा रही थीं। पुरुष जुताई में व्यग्र थे। ऊंचे वृक्षों पर फाख्ता बोल रही थी, पृथ्वी पर खंजन फुदक रहे थे। झाड़ियों में झिल्ली और झींगुर अपनी आखिरी तानें अलाप रहे थे। मनुष्य को फुर्सत नहीं थी। प्रकृति हेमन्त की निद्रा से पहले अलसा रही थी।

पुरली गांव से कुछ नीचे विशालकाय चीड़ों की घनी छाया में बड़ा सा बरसाती तालाब है। आस-पास के टीलों से रिस-रिस कर इसमें बहुत सा पानी जमा होता रहता है और फिर बीस फुट नीचे बीहड़ चट्टानों पर झरने के रूप में मोती उछालता गिरा करता है। तालाब बीहड़ चट्टानों से घिरा रहने के कारण ग्वाले पशुओं को यहां पानी पिलाने नहीं लाते। आमतौर पर किसी भी ज़रूरत के लिये यहां कोई नहीं आता। गांव की औरतें ही निराले के विचार से दुपहर या जब-तब अकेली-दुकेली यहां कपड़े धोने आया करती हैं।

बरसात में बहुत से मैले कपड़े जमा हो गये थे। चार दिन से रक्खी, छोटी

बहिन पारो के साथ कपड़े धोने वहां जाती थी। रक्खी के सिर घर का बोझ मां के बराबर ही था। उसकी उमर भी सत्रह की थी। शहर होता तो न जाने क्या होता परन्तु वह था कांगड़े का छोटा सा पहाड़ी गांव।

पहाड़ी गांव में संस्कृति और कवित्व शिक्षा के अभाव में कहां से हो ?

वहां न सौंदर्य का चर्चा न पूजा। रोज़मर्रा के सादे जीवन की गिनी-चुनी बातों से ही किसी को फ़ुर्सत नहीं लेकिन जब स्त्रियां कभी चर्खा कातने बैठतीं या बावड़ी पर मिलतीं, कभी किसी ने लक्खीसिंह की लड़की के चांद की परी होने में शक नहीं किया।

यूं तो सत्रह बरस की आयु में कौन लड़की सुन्दर नहीं जान पड़ती ? यदि सृष्टि का यह विधान न होता तो सृष्टि की परम्परा कैसे चालू रहती। प्रकृति के इस कामचलाऊ (Sin dua-nod) सौन्दर्य से परे जो सौन्दर्य है, जिसका अस्तित्व अधिकांश में चित्रों, मूर्तियों और कविताओं में ही मिलता है, जिसकी लाग से साधारण स्त्री या पुरुष मात्र के सौन्दर्य की स्तुति चलती है, वह तो कहीं ही मिलता है।

रक्खी की छरहरी देह, हवा में डोलते हुये केले के पत्ते की भांति स्वयं ही लच-लच जाती। उसका रंग वह था, जिसके पाने के लिये शहर की चतुर रमणियां पर्ल-शेड (मोती झलक) पाउडर का व्यवहार करती हैं। लम्बी पलकों वाली लम्बी आंखें कानों को छू लेना चाहती थीं। माथे में सीधी उतरती ज़रा लम्बी नाक, पतले-पतले होंठों को देख सहसा सीधी खड़ी हो गयी थी। हंसी उस के मुंह में छिपे अनमोल मोतियों की माला को उघाड़ने के लिये पागल रहती।

रक्खी और पारो, लकड़ी की छोटी-छोटी थापियों से आहिस्ता-आहिस्ता पीट कर, कपड़ों को धो-धो एक ओर रखती जातीं। अपने शरीर के कुरते और सिलवारें उन्होंने सबसे पहले धोकर एक ओर सूखने डाल दिये थे ताकि चलने के समय तक सूख जायें ! रक्खी शरीर पर केवल एक चादर लपेटे हुये थी। पारो की उमर कम होने के कारण कमर में केवल एक अंगोछा था।

रक्खी ने कहा—"पारो सुक्खू के कपड़े कहां लायी ?"

पारो ने जवाब दिया—"मुझे क्या पता, मां ने जो दिया ले आयी।"

रक्खी ने व्यग्र होकर कहा—"हाय-हाय, मां ने सुक्खू के कपड़े तो दिये ही नहीं, वह क्या पहरेगा ? बड़ी रानी बहिन है, जा भाग कर ले आ।"

पारो ने एक भीगी हुई सिलवार पहनी, सिर पर अंगोछा रखा और उसके ऊपर कुछ धोये हुये कपड़े सिर पर थामे वह घर की तरफ भाग गयी।

पारो चट्टानों के परे दस कदम ही गयी थी कि रक्खी के मन में खटका हुआ। उसके मन ने कहा—पारो को भेज अकेले रह उसने अच्छा नहीं किया।

उसे सहसा पूरन का खयाल आया। पूरन बीस-इक्कीस बरस का नौजवान था। उसका मकान पुरली के सामने, पानी की पतली धार के उस पार, पहाड़ के ढलवान पर बसे पनेड़ी गांव में था। वह नम्बरदार का लड़का था। आस-पास के सभी लोग पूरन की तारीफ करते थे। बहुत समझदार नौजवान, घर-बार का काम-काज बड़े लगन से देखने वाला, बड़े भाइयों के सामने उसने कभी आंख न उठायी थी।

लेकिन रक्खी उससे नाराज़ थी। वह उससे डरती थी। पांच-छः दफे पूरन उसे बावड़ी पर या सुबह-शाम बाहर जाते या लौटते मिला था। एकान्त देख आहिस्ता से रक्खी को पुकार लेता। किसी दूसरे आदमी के सामने वह चुप रहता। रक्खी को निश्चय था, पूरन उसे अकेले में मिलने की चेष्टा में रहता है। वह थापी से थप-थप कपड़े पीटती जाती और पूरन की दुष्टता की बात सोचती जाती थी।

तालाब से जिस जगह झरना गिरता है, वहां गरने की भारी झाड़ी है। कुछ आहट पा रक्खी ने सिर उठा कर देखा। सचमुच पूरन ही झाड़ियों की आड़ से निकल कर सामने खड़ा था। रक्खी बहुत घबरायी, उसकी बल खायी लटें चारों ओर बिखर रही थीं। उसके शरीर पर केवल एक भीगी हुई चादर लिपटी थी। पूरन ने होंठों पर उंगली रख उसे बिलकुल चुप रहने का संकेत किया! रक्खी क्रोध और लज्जा में बावली हो गयी।

शरीर को चादर में सिमटा, आंखें निकाल उसने कहा—"हट यहां से! तू यहां क्यों आया बेशर्म!"

इस फटकार की परवाह पूरन ने न की। वह कुछ कदम आगे बढ़ आया। रक्खी ने झुंझला कर कहा—"जा यहां से, नहीं तो मैं अभी चिल्लाती हूं, तेरा सिर दांव से कटवाती हूं।"

पूरन के चेहरे पर एक आर्द्र व्याकुलता छायी थी; मानों उसे अपने प्राणों का नहीं, कुछ और ही भय था। एक कदम और आगे बढ़ एक लम्बी सांस खींच उसने कहा—"रक्खी!"

रक्खी ने और सिमट कर कहा—"मैं चिल्लाती हूं, दूर हो चाण्डाल!"

आहिस्ता से पूरन बोला—"तू चिल्लायेगी तो मैं झरने वाली चट्टानों पर कूद पड़ूंगा।"

रक्खी ने चिल्लाने के लिये छाती में सांस भरी, पलक मारते में पूरन झरने की एक डाल पकड़ झरने पर लटक गया। केवल पूरन का मुंह और बांहें रक्खी को दिखायी दे रही थीं।

रक्खी की चिल्लाहट दब गयी। भय से तड़फ कर उसने कहा—"हाय, ना पूरन!"

पूरन फिर ऊपर आ गया। रक्खी उसी तरह गठरी सी बनी बैठी थी। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में जल भर आया। पूरन को आगे आते देख, रक्खी ने गिड़गिड़ाकर कहा—"हाय, मैं तेरे पैर पड़ती हूं, तू जा।"

कांपते हुये स्वर में पूरन बोला—"मैं जाता हूं पर एक बात पूछूंगा। रक्खी, तू मुझ से ब्याह करेगी?"

रक्खी का सारा शरीर लाल हो गया। उसने फिर गिड़गिड़ा कर कहा—"हाय, तू चला जा।"

पूरन ने कहा—"रक्खी, तू मुझ से ब्याह नहीं करेगी तो मैं ज़हर खाकर मर जाऊंगा। बता मुझ से ब्याह करेगी?"

रक्खी ने कातर स्वर में कहा—"मैं क्या जानूं, चाचा जानें। तेरे पैर पड़ती हूं जा, कोई आ जायेगा।"

पूरन ने कहा—"पारो तो अभी घर पहुंची होगी। रक्खी, मैं दिन-रात तेरा नाम जपता हूं, तू मुझ से नाराज़ क्यों रहती है?"

रक्खी ने अत्यन्त व्याकुल स्वर में फिर दुहराया—"हाय पूरन, जा।"

पूरन ने प्रार्थना के स्वर में पूछा—"सच बता, मुझ से नाराज़ है। मेरे सिर की कसम, एक दफे बता दे!"

रक्खी ने आंखें पोंछ जवाब दिया—"नहीं, अब जा, पारो आ जायेगी।"

पूरन ने कहा—"मैं जाता हूं, पर तू रोज़ पानी लेने आमले वाली बावड़ी पर आना। देख, मैं कुछ बोलूंगा नहीं, केवल एक आंख देख लिया करूंगा।" रक्खी हाथ जोड़ बिलख कर बोली—"हाय पूरन, जा।"

"जाता हूं।" पूरन ने कहा, "पर जिस दिन तू नहीं आयेगी, मैं इसी झरने पर आकर कूद पड़ूंगा।"

पूरन चला गया।

अगले दिन रक्खी दिन भर असमंजस में पड़ी रही। मन भारी-भारी सा हो गया। वह पूरन की बात न सोचने का यत्न करती थी परन्तु वह मन से हटता ही न था। उसे पूरन पर क्रोध आता, क्यों वह उसके मन में बार-बार आता

है। क्रोध उसे आता परन्तु पूरन के प्रति पहला विद्वेष और घृणा अब न जाने कहां चली गई ?

रक्खी को जान पड़ता—वह थक गई है, जल में बही चली जा रही है। पांव पृथ्वी पर नहीं लगते, दूर किनारा दिखाई दिया परन्तु किनारे पर पूरन खड़ा था। चारा न था, उस ने आंखें मूंद लीं परन्तु निश्चय था वह डूबेगी नहीं।

तीसरे पहर उस की छाती लुहार की धौंकनी की तरह धक-धक करने लगी। आमले वाली बावड़ी पर वह किस तरह जाय और न जाने से ही कैसे निर्वाह होगा ? उस ने मन में कहा—चाहे जो हो, यह बेशरमी मुझ से न हो सकेगी। व्याकुलता और भय से उस के लिये खड़ा रहना असम्भव हो गया। वह एक चादर में मुंह लपेट खाट पर पड़ गई।

दिये जल गये पर रक्खी खाट से न उठी। मां के बुलाने पर उस ने कह दिया—सिर में दरद हो रहा है। उस का हृदय द्रवित होकर नेत्रों के रास्ते बह जाना चाहता था। इच्छा होती थी, खाट के नीचे धरती फट जाती और वह उस में समा जाती। उसी समय उस का पिता लक्खीसिंह बाहर से लौटा। घबराई हुई आवाज़ में उस ने रक्खी की मां से कहा—"बड़ा जुल्म हुआ, नम्बरदार का लड़का पूरन 'चीड़ताल' के झरने में गिर पड़ा।"

रक्खी की मां की चीख निकल गई, उस ने कहा—"क्या ?"

लक्खीसिंह ने कहा—"अपनी एक भैंस को ढूंढ़ने वह ताल पर गया था, जाने कैसे उस का पैर किसी पत्थर पर से फिसल कर वह नीचे झरने में गिर पड़ा। भला हुआ, पिरथू नीचे खेत में था। उस ने देख कर शोर मचाया। कई आदमियों की मदद से, वहां से निकलवाया। नम्बरदार के घर पहुंचा कर अभी आ रहा हूं।" लम्बी सांस खींच उस ने कहा, "देखो भगवान की करनी। लड़का चट्टानों पर नहीं गिरा। चीड़ों और गरनों की जड़ों में उस की टांगें फंस गईं, टांगों की तमाम खाल खिंच गई पर जान बच गई। चट्टान पर गिरता तो हड्डी चूर-चूर हो जाती।"

रक्खी ने पहली ही बात सुनी। हाय, वह डायन आमले वाली बावड़ी पर नहीं गई। वह मूर्छित हो गई। बात का पिछला भाग कानों के रास्ते दिमाग में न पहुंच सका। मां ने जब उसे खाना खा लेने के लिये पुकारा। उत्तर न पा समझ लिया, लड़की को नींद आ गई है।

कुछ रात और जाने पर सोने से पहले मां बेटी को देखने आई। रक्खी खाट पर चित पड़ी खुली आंखों से छत की ओर देख रही थी। मां को उस ने

नहीं देखा। मां ने लड़की के सिर पर हाथ रख दिया—वह बुखार की गरमी से जल रहा था।

मां और पारो घबराहट में बैठ कर रक्खी के हाथों और पैरों को कांसे की कटोरी से मलने लगीं। मां पारो को पूरन के गिरने और बचने का हाल जैसा-जैसा पड़ोसनों से सुना था, समझा रही थी। धीरे-धीरे वह बात रक्खी के कान में भी पहुंची। वह फूट कर रो उठी। पारो ने पूछा—"बहिन, सिर दरद हो रहा है क्या ?"

मां ने कहा—"नहीं-नहीं बुखार की बेहोशी है। ला ठण्डे पानी का अंगोछा सिर पर रख।"

रक्खी रात भर रोती रही।

तीज का त्योहार था। रिम-झिम, रिम-झिम पानी बरस रहा था। लड़के लड़कियां, गांव की मनचली नवेली बहुएं नम्बरदार के आंगन में लगे शहतूत के बड़े पेड़ पर झूला डाल कर झूल रही थीं और गीत गा रही थीं। रक्खी बहुत मनाने पर भी नीचे न उतरी। वह गुम-सुम उंआसी बैठी थी। आठ मील पर उस का मायका है परन्तु पहली तीज पर भी एक दिन के लिये उसे मायके जाने न दिया। छोटा भाई बुलाने आकर लौट गया। रात वह पूरन से रूठ गई तो उसे डांट खानी पड़ी। बरस भर उसे ससुराल आये नहीं हुआ लेकिन इसी बीच में कई दफे उसे डांट और मार की धमकी मिल चुकी थी। वह लाड़ से पली लता की तरह थी। मां-बाप ने उसे कभी तिर्छी आंखों न देखा था। उस का दिल भला धमकियां सहने लायक था ?

बीरो रक्खी की ननद थी। उस का ब्याह हुये चार बरस हो गये थे लेकिन अब भी वह तीजों पर मायके आई थी। रक्खी की ससुराल में वही सहेली थी। जिठानियां उस पर नाजायज़ दबाव रखना चाहतीं। सास की नजरों में छोटी बड़ी सब एक थीं। एक बीरो को ही उस के प्रति पक्षपात था। कुछ उस के अनुपम रूप के कारण, कुछ सरलता के कारण, कुछ बचपन का सहेलापा। उस से उसे कुछ बटाना न था। बीरो की उम्र कुछ ज्यादा न थी परन्तु उस का दबदबा था। पति भी उसे बहुत मानता था। वह खास समझदार समझी जाती थी। बीरो और रक्खी एक खाट पर लेट घंटों सुख-दुख की बातें किया करतीं। रक्खी की जिठानियां जलतीं और बड़बड़ातीं परन्तु

वीरो को कोई कुछ न कह सकता। बड़े घर ब्याह कर लड़की मायके में भी बड़ी हो जाती है।

वीरो ने रक्खी की आंखें अपने आंचल से पोंछ कर कहा—"हाय हाय, पागल लड़की इतना घबराती है!" रक्खी उसकी गोद में सिर रख कर बोली, 'मैं तो यों ही मर जाऊं तो अच्छा है पर मुझ बदकिस्मत को मौत कहां?"

वीरो ने उसे छाती से लगा लिया—"कैसी बातें करती है! तुझे कौन दुख है पगली; तेरे जैसा मर्द किसके होगा?" और उसका सिर चूम लिया।

रक्खी ने कहा—"जीजी, अब वह बात नहीं। मर्दों के दिल का ठिकाना नहीं। मुझे मां-बाप ने कभी आंख तक नहीं दिखायी। ये मुझे हमेशा धमकाते रहते हैं, मारने की धमकी देते हैं। मैंने कहा—मुझे एक दिन के लिये मां को देखने भेज दो। नहीं माना। उल्टे धमकाने लगे। अब अपना मन हो तभी हंसते-बोलते हैं, नहीं तो बात-बात पर डांट देते हैं। जीजी, अब मेरा दिल जीने को नहीं चाहता। उनका दिल अब फट गया है। न जाने उनका दिल 'उसी' बात से नाराज़ है, पहिले दिन ही मुझे डांटने लगे थे। जीजी, उनका जी बड़ा कर्रा है, ज़रा दया नहीं। उन्हें मेरी कुछ परवाह थोड़े ही है!"

वीरो ने रक्खी की पीठ पर हाथ रख, उसे गोद में खींच कर कहा—"पागल है, तेरी जितनी परवाह पूरन करता है, उतनी कोई क्या करेगा? मर्द ने ज़रा डांट-डपट न की तो ऐसा मिट्टी का लोंदा मर्द ही क्या? यह तो मर्दों की मर्दानगी है, उनका कायदा है। बिलकुल मिनमिन करे, ऐसे मर्द से तो किराहत उठती है। पागल, अपने मर्द की डांट तुझे बुरी लगती है? तेरी परवाह उसे न हो तो तू कहीं जाये, उसे क्या मतलब? तू तो उसके दिल का टुकड़ा है। इसी से तुझे पूरन सोने की डिबिया में रखता है। मैं जानती हूं, तेरी तकलीफ सुन कर पूरन कैसे बेहाल हो जाता है पर यह सब के सामने कहने लगे तो कैसे काम चले? हाय, शरम भी तो आती है। अपनी ही चीज़ को डांटा भी जाता है। डांटने क्या किसी और को जायगा? जिस पर मरता है उसी को तो डांटेगा।"

रक्खी ने गहरी सांस ले आंसू पोंछते हुये कहा—"जीजी, वह बात अब नहीं। कहां जान देने को फिरते थे, कहां बात-बात पर धमकी!"

वीरो ने छोटी भाभी को गले लगा कर कहा—"पहले और बात थी, तू पराई चीज़ थी, तुझ पर हक नहीं था, तेरी खुशामद थी, अब तू है अपनी। समझी पगली?.....बोल, तू क्या पराई बन कर रहेगी?"

मज़हब

पन्ना ने एक किताब में पढ़ा था—मास्को में रूसियों ने सैकड़ों गिरजे, मसजिदें और सेनागॉग (यहूदियों के उपासना स्थान) गिरा दिये और शेष के ऊपर मोटे अक्षरों में लिख दिया है—'मज़हब जन समुदाय को अकर्मण्यता में गर्क कर देने वाला अफीम का नशा है' (Religion is the opium of masses) और उन्हें स्कूलों, क्लबों, अजायबघरों में बदल दिया है।

रूस की नयी सभ्यता में उसका अडिग विश्वास था। अवनति के गढ़े में गिर कर भारत के सड़ते रहने का कारण भारत में मज़हब के मारात्मक नशे की व्यापकता था। इस व्याधि को जड़ से दूर करने के लिये उसका मन छटपटा उठता।

मज़हब और उसके चिन्हों के प्रति उसकी वितृष्णा इतनी बढ़ गयी कि उन की छाया भी उन्हें असह्य थी। शिखा-सूत्र वह छोड़ ही चुका था। अब उसे धोती में भी साम्प्रदायिकता की झलक दिखायी देने लगी। उसने उसे भी छोड़ निकर पहनना शुरू कर दिया। मज़हब का इतना भयंकर शत्रु होते हुये भी वह प्रयाग, अर्ध-कुम्भी पर गया था—परलोक प्राप्ति के लिये नहीं बल्कि परलोक-परायण जन-समूह की मूर्खता देखने के लिये।

दोपहर का समय था। वह अपने साथियों सहित त्रिवेणी से लौट रहा था। उसी समय देखा, एक औरत भीड़ से ज़रा परे खड़ी मुंह छिपाये फूट-फूट कर रो रही है। उस गरीब हिन्दू स्त्री ने कुछ संकोच से तीनों की ओर देख कर कहा कि वह अपने साथियों से बिछुड़ गयी है, कोई उसे उसके आदमियों के पास पहुंचा दे, नहीं तो वह भटक-भटक कर मर जायेगी, मुसलमान गुण्डे उसे सुबह से परेशान किये हैं।

पन्ना ने कहा—यह देखो, मज़हब की महिमा। यह औरत यहां परलोक

कमाने आई है और पण्डों और गुण्डों के हाथ अपना यह लोक भी खोया चाहती है। ताज्जुब नहीं जो प्राण भी खोये।

अपने दोनों साथियों की अपेक्षा पन्ना के दिल में अधिक सहानुभूति थी। उस ने औरत से पूछा—"तुम्हारे आदमी कहां ठहरे हैं?"

आंखें पोंछते-पोंछते औरत ने सिसक कर उत्तर दिया—"वहां धर्मशाला में।"

धर्मशाला का नाम पूछने पर उस ने घबरा कर कहा—"धर्मशाला का नाम तो वह नहीं जानती, धर्मशाला बहुत बड़ी है और बाजार में है।"

परलोक की कामना से पागल, स्वार्थी भीड़ में जहां प्रत्येक दूसरों को धक्का देकर स्वर्ग में स्थान पाने के लिये विह्वल है या उचक्के आततायी भोले-भालों का आखेट करने की ताक में फिर रहे हैं, इस अबला की क्या अवस्था होगी; यह सोच पन्ना का मन पिघल गया। उस ने सोचा, इन लाखों धर्म-ध्वजियों की अपेक्षा वह स्वयं कहीं अधिक पुण्यात्मा है जो निस्वार्थ भाव से एक अबला की सहायता करने के लिये कष्ट उठाने को तैयार है। वह जरूर उस औरत को उस के आदमियों से मिला देगा। न हो वह उसे सभी धर्मशालाएं घुमा कर दिखा देगा।

वह उसे उदासियों की धर्मशाला में ले गया परन्तु वहां उस औरत का डेरा न मिला। उस ने सोचा औरत बेचारी पैदल कहां तक चलेगी? एक टांगा उस ने किराये पर लिया और उसे स्टेशन की धर्मशाला ले गया परन्तु वह धर्मशाला भी उस औरत ने नहीं पहचानी। इस के बाद दूसरी फिर तीसरी, चौथी·····कितनी धर्मशालाएं वे घूम चुके; कुछ पता न लगा और सूर्यास्त हो चला!

तांगे वाले ने कहा, उस का घोड़ा सुबह से जुता है, थका और भूखा है; आखिर उसे खोलना भी है। तांगा छोड़ वह औरत को पैदल ही ले चला। मन में सहानुभूति और सेवा का प्रचुर भाव होते हुये भी वह अब घबराने लगा—यदि कोई ठिकाना न मिला तो वह इस औरत को कहां रखेगा?

आखिर उसे एक उपाय सूझा। स्त्री से बोला—"चलो तुम्हें सेवा-समिति में पहुंचा दूं। वे लोग तुम्हें तुम्हारे शहर और तुम्हारे घर तक पहुंचा देंगे।"

इधर इतनी देर तक तांगे पर पन्ना के साथ घूमने के बाद ज्यों-ज्यों पन्ना की व्याकुलता बढ़ती गई, स्त्री की घबराहट मिट एक प्रकार की लापरवाही आती गई।

सेवा-समिति में पहुंचाये जाने की बात सुन स्त्री का रुख एकदम बदल गया।

आंखें निकाल आवाज़ को ऊंचा कर और दायें हाथ से पन्ना की कलाई थाम औरत ने कहा—"हैं !" अब कहां जा रहा है ? पहले मुझे बेघर-बार किया, अब मुझे धोखा देकर कहां जाना चाहता है ? चाहे मैं मर जाऊं, अब तुझे मैं कभी नहीं छोड़ सकती।"

स्त्री की बात सुन पन्ना के सिर पर बिजली गिर गई। भौंचक हो वह उस के मुंह की ओर देखने लगा।

स्त्री ने पन्ना की कलाई न छोड़ी बल्कि और खींसें निकाल कर बोली—"ओ हो, अब कैसा भोला बन गया, मेरा सारा जेवर खाकर !"

पन्ना के रहे-सहे होश उड़ गये।

मर्द औरत में झगड़ा होता देख आस-पास से लोग कौतूहलवश इकट्ठे होने लगे। लोगों का तमाशा न बन कर और बुरी गत कराने की अपेक्षा औरत से एकान्त में झगड़ना उस ने अच्छा समझा। उसे ले वह एक ओर चल निकला। वह परेशान था, परोपकार करने आकर वह अच्छी मुसीबत में फंसा। क्या उसे औरत भगाने के अपराध में जेल काटनी पड़ेगी ?

औरत चलती जा रही थी। जबान उस की एक क्षण को भी थमना न चाहती थी। वह एक ही टेर लगाये थी—"मेरा हजार रुपये का जेवर खा लिया, अब गंगा नहलाने के बहाने लाकर मुझे यहां छोड़ना चाहता है। मेरी इज्जत भी ली, मेरा रुपया भी लिया···।"

पन्ना का सिर घूम रहा था। वह उस औरत के साथ घूमता-घूमता कटरा मुहल्ले में आ पहुंचा।

एक तरफ हलवाई की दुकान से ताजी पूरियां निकलने की सुगन्ध उड़ रही थी। औरत से न रहा गया। कड़क कर बोली—"सुबह से घूमते-घूमते पैर रह गये, पेट में एक दाना नहीं गया। कुछ खाने को देगा या भूखा मारेगा ?"

पन्ना पर औरत का आतंक बैठ गया था। उस ने उस की ओर देख कर कहा—"क्या खायेगी ?"

औरत ने झुंझला कर कहा—"पूरी ले ले, और क्या चौका लगाने बैठूंगी ? मरने को तो जगह है नहीं।"

चौके का नाम सुनते ही पन्ना का मस्तिष्क साफ हो गया। इस शब्द को लेकर उस ने कितनी ही बहसें की थीं। उस ने भी गरम होकर जवाब दिया—"पूरी खायेगी, ऐसी साहूकार की बेटी है न ! जो खाऊंगा, सो तू खायेगी, चल नानवाई के यहां से रोटी-गोश्त ले दूं।"

औरत पर मानों घड़ों पानी पड़ गया। पल भर पन्ना के मुंह की ओर देख कर, वह राह चलतों को पुकार कर चिल्लाने लगी—"अरे देखो कोई ! यह मूंड़चिरा मुसलमान मेरे पीछे पड़ा है।"

सब कुछ करके भी मुसलमान के साथ रह अपना धर्म गंवाना औरत को मंजूर न था।

कुछ लोगों ने पुकारा—"कौन है ?"

पन्ना सिर पर पैर रख भाग खड़ा हुआ।

एक गली में किसी को अपना पीछा न करते देख उसने दम लिया। माथे का पसीना पोंछ गली के दूसरे सिरे पर पहुंच एक तांगे वाले को बुला वह अपने डेरे पर पहुंचा।

आधी रात में बरबाद सी हालत में उसे लौटते देख साथियों ने पूछा—"क्या हुआ ?"

कम्बल में मुंह लपेटते हुये पन्ना ने कहा—"ऐसी-तैसी !"

साथियों ने पूछा—"आखिर कुछ कहो तो !"

पन्ना ने उत्तर दिया—"सब कुछ कहूंगा परन्तु अब मज़हब के खिलाफ एक शब्द न कहूंगा·····आज उसी से जान बची।"

कर्मफल

बहुत जाड़ा था। बहुत ज़ोर का पानी पड़ रहा था। बाज़ार और गली-कूचे सूने पड़े थें। बहुत ज़रूरी काम के बिना कोई मकान के बाहर निकलना न चाहता था।

जिन लोगों के मकान नहीं, सर्दी ओर तपिश में जिन लोगों के लिये 'ईश्वर' का आकाश या म्युनिसिपैलिटी के लगाये पेड़ ही आश्रय हैं, वे लोग भी जहां-तहां भले लोगों के मकान या हवेलियों की आड़ में छिप कर हवा-पानी से सिर बचाने की कोशिश कर रहे थे। सेठ जी की हवेली के लम्बे-चौड़े सूने बरामदे में समीप के नीम के नीचे से एक बेघर-बार का 'जीव' सरक आया। उसके बाद दूसरा, तीसरा, इसी तरह छः-सात 'जीव' आ जमा हुये। बरामदे के दायीं ओर के कोने में जहां बौछार न आ सकने से जगह बिलकुल खुश्क थी, वहां पहले आकर जिसने अपना टाट का टुकड़ा बिछा लिया था, उसे दूसरे 'जीवों' का वहां पर आकर घपला करना असह्य हो रहा था लेकिन बाद में आये हुओं के लिये तेज़ हवा और बौछार से बचने की इच्छा न करना भी असम्भव था। वे पहिले आये व्यक्ति के अधिकार को उसके पीछे किसी प्रकार की शक्ति न होने के कारण मानने के लिये तैयार नहीं थे। इन बेवकूफों को इतनी तमीज़ नहीं थी कि यदि दखल के अधिकार को न माना जाय तो ज़मींदारी और सम्राटों की सत्ता भी नहीं रह सकती।

झगड़ा होने लगा। चीख-पुकार मचने लगी। मां-बहन को ले तरह-तरह की ललकार सुनायी पड़ने लगी। इस सब के ऊपर गोद में छिपे, सर्दी और भूख से बिलखते बच्चे अपनों पर होते अत्याचार के प्रतिकार में चिल्लाने लगे।

सेठ जी अंगीठी के सामने बैठे ज़रूरी कागज़ात देख रहे थे। शोर से उद्विग्न हो उन्होंने द्वारिका धीमर को ललकारा—"यह सब क्या घपला है ?"

अनिच्छा से रजाई छोड़ कर द्वारिका ने बरामदे में झांका। क्रोध में उस ने डण्डा उठाया और गालियां देते हुये उन सब अवांछनीय बदमाशों को वहां से खदेड़ दिया।

कोई भाग कर किसी बन्द दुकान के छज्जे के नीचे जा बैठा, कोई किसी ड्योढ़ी की आड़ में हो गया लेकिन बिंदी की टांगों में इतना ज़ोर बाकी न था, तिस पर गोद के बच्चे का बोझ। टाट के टुकड़े में लिपटे बच्चे को पेट से चिपका वह फिर दस कदम पर नीम के पेड़ के तने से सट कर जा बैठी।

अंधेरा खूब घना हो गया था पर पानी के रुकने का कोई आसार न था, तिस पर पछवा खूब तेज बह रही थी। रोते-रोते बिन्दी के बच्चे का गला रह गया, पर उस की हिचकी बन्द न होती थी। पिछली सांझ से बच्चे के मुंह में कुछ नहीं गया था। बारिश के मारे कोई 'भला आदमी' घर से बाहर निकलता नहीं, बिन्दी को कोई पैसा-धेला कहां से मिलता ? मुंह में अन्न गये बिना उस की छाती में दूध कहां से आता ? बच्चा अपने एक निर्बल दांत से छाती को काट कर पेट भर लेने की कोशिश दिन भर कर चुका था। न छाती में ही कुछ था और न दांत में शक्ति ही। तिस पर वह जाड़ा जो ईंट-पत्थर की दीवारों को भेद, मोटे-मोटे लिहाफों के भीतर पहुंच, शरीर के रोंगटे खड़े किये देता था।

बिन्दी का बच्चा रह-रह कर चिड़िया के बेपर चूज़ की तरह मुंह बा देता। न उस में से रोने की ही आवाज़ निकल पाती थी, न उस में जीने के लिये ही कुछ था। बिन्दी अधीर हो, पुचकार-पुचकार उसे अपने शरीर की गरमी से गरम रखने की चेष्टा कर रही थी। यदि मां के स्नेह में बच्चे को जाड़े से बचा लेने की शक्ति होती; यदि उस में बच्चे का पेट भर देने की सामर्थ्य होती !

बिन्दी न डाक्टर थी, न वैद्य लेकिन बच्चे के दरद को मां का हृदय अनुभव न करेगा तो कौन करेगा ? जब म्युनिसिपैलिटी के घण्टाघर ने इस हवा-पानी में भी भले आदमियों को यह सूचना देना जरूरी समझा कि दस बज गये हैं, सोने का समय हो गया है, उस समय बिन्दी को सहसा ऐसा जान पड़ा मानों उस की गोद सूनी हो गई; उस की गोद का बोझ बेमतलब हो गया। उस के हृदय से एक मर्मभेदी चीख निकल पड़ी। वह सिर और छाती पीट-पीट रोने लगी। सुनसान रात में आराम के वक्त उस के क्रन्दन से भले आदमियों की नींद खराब न हो इसलिये पछवा उस की तीखी-चीखों को उड़ाये लिये जा रही थी, पानी उसे दबाये दे रहा था।

नीम के ठीक नज़दीक, ऊपर दुमंज़िले पर जो खिड़की थी, वहीं सेठानी जी के सोने का कमरा था। सेठानी जी नींद न आने के कारण दुखित हो नींद की प्रतीक्षा कर रही थीं। समीप ही उन की बिटिया सो रही थी। कुछ दिनों से बीमार सी रहने के कारण बिटिया दुबला गई थी। गाल ढीले पड़ कर आंखें कुछ-कुछ दिखाई देने लगी थीं। सेठानीजी बिटिया की कमज़ोरी के कारण परेशान रहतीं। नीचे से बेवक्त रोने की आवाज उन्हें बहुत बुरी मालूम हुई। चिल्ला कर उन्होने पुकारा—"अरे कोई है ? देखो, नीचे यह कौन स्यापा डाल कर अपनों को रो रहा है ? बिटिया की ज़रा आंख लगी है। उसे क्या सोने नहीं देगा ?"

मां की कोमल आवाज़ से नन्हीं की नींद उचट गई। पूछा—"क्या है मां ?"

मां ने पुचकार कर कहा—"कुछ नहीं मेरी रानी बेटी, सो जा।"

बेटी ने पूछा—"कोई रोता है क्या मां ?"

मां ने बेटी को पुचकारा—"तू सो जा बेटी, कोई रांड नीचे बाजार में अपने करमों को रो रही है। तू सो जा, मैं अभी भेज कर उसे निकलवाये देती हूं।"

नीचे से रोने की आवाज़ आ रही थी। सेठानी जी ने उन्हें ओर उन की बिटिया को यों दुख देने वाले के विरुद्ध भगवान को दुहाई दी और द्वारिका को पुकारा।

नीम की तरफ से द्वारिका की ललकार सुनाई दी—"चल हट रांड यहां से, तमाशा करने आई है ! नहीं एक डण्डे से सिर तोड़ दूंगा।"

नन्हीं ने मां को सम्बोधन कर कहा—"यह कोई बड़ी पापिन होगी मां जो ऐसे रो रही है।"

"और क्या बेटी।" कह कर मां ने बेटी के धर्मभाव का अनुमोदन किया और सुलाने के लिये उस का सिर सहलाने लगी।

अपने बेमतलब बोझ को छाती से चिपटाये बिन्दी रोती-चीखती दूर चली गई। ऊपर लिहाफ में लेट कर सेठानी जी भगवान का नाम लेती भगवान से भिक्षा मांगने लगीं—"मेरी बेटी का कष्ट दूर करो भगवान···जिस ने बेटी की नींद बिगाड़ दी, उस का सत्यानाश हो।"

दर्पण

मेरी स्त्री का सिद्धांत है—संसार के सभी महापुरुषों की महानता का श्रय है, उनकी धर्मपत्नियों को। मैं एक महापुरुष नहीं बन सका। अन्य व्यक्तियों की दृष्टि में चाहे मेरी सैकड़ों न्यूनतायें हों परन्तु श्रीमती जी की दृष्टि में केवल एक ही कारण है और वह यह कि मैं पूर्ण रूप से श्रीमती जी का अनुगत, जैसा कि उनकी राय में होना चाहिये, नहीं हो सका।

जब श्रीमती जी ने हम लोगों के मकान के ऊपर के दो कमरे चित्रा को रहने के लिये देने का प्रस्ताव किया तो उसमें मुझे कुछ एतराज़ न था बल्कि प्रसन्नता ही थी। चित्रा बंगाली युवती थी इसलिये कुछ तो कौतूहल और कुछ उसके भोले चेहरे और आयत लोचनों के समीप रहने से किसी दिन उसी के मुख से उसके जीवन की मर्म-कथा सुनने की आशा थी।

प्रसन्नता प्रकट न करने का यह कारण था कि श्रीमती जी किसी आशंका से चित्रा को स्थान देने के लिये निरुत्साहित न हो जायें। उनके प्रस्ताव पर इतना ही कहा—"क्या झंझट सिर लोगी ? उसके देवर है, शायद मां-बाप भी हों। जिसका अपने घर निर्वाह न हुआ, वह तुम्हारे घर ही क्या शान्ति से रह सकेगी ?"

मेरी आशा के अनुकूल झमक कर श्रीमती जी बोलीं—"यही तुम्हारे उदार विचार हैं ? तुम नहीं जानते वे सब लोग कितने कट्टर हैं ? जब रतन के जीते जी उन लोगों ने बेचारी से सीधे मुंह बात नहीं की तो अब उसे क्या झेलेंगे ? ऐसी सुशील लड़की है बेचारी ! यहा रहेगी उसका मन लगा रहेगा, तुम्हारी 'किरण' को भी दो अक्षर बतायेगी; तुम्हारा क्या हर्ज है ?"

पराजय स्वीकार कर ली—"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

मुझ पर झुंझला सकने का और मुझे उचित मार्ग पर ला सकने का सुयोग

पा श्रीमती जी को सन्तोष हुआ। चित्रा हमारे यहां आकर रहने लगी।

रतन रिश्ते में मेरा साला था। वह भी शायद श्रीमती जी के मामा का रिश्ते में भांजा होने के नाते से। तीन-चार बरस वह कानपुर में व्यापार के सिलसिले में रहा था। वहीं उसने एक युक्त-प्रान्तवासी बंगला युवती से गन्धर्व-विवाह—जिसे आजकल की कचहरी की भाषा में सिविल मैरेज कहते हैं—कर लिया था। लाहौर सपत्नीक लौटने पर हम लोगों की बिरादरी ने उसका स्वागत नहीं किया।

न करे! रतन जवां मर्द था। उसने किसी की कुछ परवाह न कर बिरादरी की छाती पर मूंग दली। एक किराये का मकान ले, अपना सुहावना जगत बसा लिया।

रतन से मेरा कुछ विशेष सरोकार न था परन्तु इस जोड़ी का निगूढ़ प्रेम और आत्म-निर्भरता देख उनके प्रति सहानुभूति थी। वे कभी-कभी हमारे यहां आते-जाते परन्तु हाय भाग्य! रतन बीमार हुआ, हालत खराब हुई, मर गया।

श्रीमती जी का कहना है, बीमारी के छः मास चित्रा ने रतन की वह सेवा की कि कोई क्या करेगा।

जितना देख पाया, उससे यह कह सकता हूं, लड़की के व्यवहार में सरलता और शालीनता भरी थी। यहां तक कि श्रीमती जी को भी उसमें अभिमान की गन्ध न आयी। उनके मुख से मैं सदा ही चित्रा की प्रशंसा सुन पाता और किरण तो मुझ से कई दफे कह चुकी थी—"पिता जी, हम मौछी की बेटी हैं।"

एक दिन बिलकुल एकान्त पा, श्रीमती जी ने मेरे कान के समीप मुख कर कहा—"देखो तो, आखिर हर बात की एक सीमा होनी चाहिये।"

उसी तरह पूछा—"क्या बात है?"

श्रीमती जी ने उत्तर दिया—"मैं तो हैरान हूं। मैं स्वयं यह नहीं चाहती कि विधवायें शोक-वेश बनाकर रहें परन्तु यह चित्रा तो हद कर रही है। आखिर वह विधवा है। नहीं रहा जाता तो विवाह ही कर ले। उसे डर किस का है। बिरादरी का भी झंझट नहीं।"

कुछ न समझ पूछा—"क्यों बात क्या है। उसे कभी बेहूदे ढंग से बाहर कदम रखते नहीं देखा। हां, अलबत्ता सफाई और ढंग से ज़रूर रहती है।"

श्रीमती जी ने मेरे इस नम्र विरोध से खीझ कर जवाब दिया—

"हां, तुम बहुत जानते हो न ? मैंने कई दफे देखा है, आइने के सामने घण्टों बाल काढ़, सिंदूर डाल, बेंदी लगा, साड़ी कंधों पर रखे बैठी अदा से मुस्कराया करती है। कई दफे मैं ऊपर गई और उसे इस तरह देख लौट आई। कई दफे जांचने के लिये मैंने किरण को भेजा—जा देख मौसी क्या कर रही है ? उस ने भी आकर कहा—मौसी बाल काढ़ रही है, बोलती नहीं।"

रहस्य को न समझ टाल गया—"होगा, पर उस में हाव-भाव की चंचलता कभी देखी नहीं।"

पर-नारी की प्रशंसा करने की मेरी भूल का परिणाम तुरन्त मेरे सामने आ गया। श्रीमती जी जरा तीव्र स्वर से बोलीं—

"मैं यह तो नहीं कहती कि वह गली-गली लोगों को रिझाती फिरती है। अकेले छिप कर जो वह घण्टों आईने के सामने झूमा करती है, उसे लुकाने-छिपाने की क्या जरूरत ? कोई रोकता है ?"

पूछा—"आखिर कुछ तो मतलब होगा ?"

"मतलब क्या।" श्रीमती जी ने कहा, "रूप का गुमान है।"

मुस्करा कर जवाब दिया—"रूप, अलबत्ता कुरूप नहीं है लेकिन तुम्हारे सामने वह क्या गुमान करेगी ?"

श्रीमती जी की आंखों में चमक आ गई, हृदय की उदारता पिघल पड़ी। बोलीं—"वह बेचारी अपना रूप किसे दिखायेगी ? अकेले में जरा दिल बहला लेती है, क्या हर्ज है।"

उपरोक्त चर्चा को भूल चुका था। एक रोज़ किरण चित्रा के कमरे से एक आइना लिये हुये आई और कहने लगी—"मां जी, मौछी का छीछा हम लेंगे।"

उस की मां ने धीरे से मेरे कान में कहा—"इसी आइने में देख वह सिंगार किया करती है। वह सिंगार में लगी होगी, यह शैतान आइना उठा लाई।"

प्रकट में किरण को डांट कर श्रीमती जी बोलीं—"शैतान मौसी का शीशा क्यों उठा लाई ?"

दूसरे सांस में पुचकार कर कहा—"आ रानी बेटी, मौछी का शीशा दे दे, मैं तुझे इस से अच्छा ला दूंगी।"

किरण अपनी राय बदलने के लिये तैयार न हुई। आइना दरअसल सुंदर

था । पान की शकल का या जिसे 'हार्टशेप' कहते हैं । कछुये की खोपड़ी में जड़ा हुआ, दल खूब मोटा और पानी साफ ।

ऊपर से चित्रा ने आ, मुस्करा कर कहा—"आओ बेटी, हम तुम्हें इस से अच्छा शीशा दें ।

किरण पर इस बात का भी कुछ असर न हुआ । आइने को दोनों हाथों से चिपका कर वह ठुमकती हुई मेरी कुर्सी के पीछे हो गई । खुद भी समझाया पर कुछ असर न हुआ ।

चित्रा बोली—"किरण अपने आप ही हमें शीशा दे जायेगी । आओ किरण, चलें ।" और वह सीढ़ियां चढ़ने लगी ।

चित्रा गई ही थी कि किरण के हाथों से शीशा फिसल पड़ा और फर्श पर गिर उस के टुकड़े बिखर गये । किरण डर गई, उस की मां का चेहरा फक हो गया । श्रीमती जी ने मेरी ओर देख कर कहा—"अब !"

मैं स्वयं चिन्तित था । उपाय केवल एक था कि तुरन्त वैसा ही आइना बाजार से लाया जाय परन्तु वह कहां का बना है और कहां मिल सकेगा, यह देखने के लिये उस के कछुये की खोपड़ी के फ्रेम को उठाया । उस पर हिन्दी में कुछ खुदा हुआ था । पढ़ कर मैं हतचेतन सा रह गया ।

किरण की मां को भी दिखाया । उस पर खुदा था—"यह आइना मेरा हृदय है । जब तुम इस में अपनी सुन्दर छबि देखो, समझना मेरे हृदय में बसी अपनी मूर्ति को देख रही हो—रतन ।"

किरण की मां की आंखों में आंसू आ गये । मैंने सोच कर कहा—"इसलिये वह मुस्करा कर, सिंदूर लगा कर सदा इस आइने के सामने जाती थी ।"

उपाय कुछ नहीं था । नहीं जानता किन शब्दों में श्रीमती जी ने चित्रा से क्षमा मांगी और अनुताप प्रकट किया ।

चित्रा इस दिन के बाद से बहुत उदास रहने लगी । यहां तक कि किरण को गोद में लेकर भी वह न हंस पाती । जब किरण उस से जा चिपटती तो वह केवल उस के सिर पर स्नेह से हाथ फेर देती ।

चित्रा बीमार सी रहने लगी । वह बिस्तर पर नहीं लेटी परन्तु सूखती गई । एक दिन कहीं जाने के लिये तैयार हो बैठी ।

उस ने कहा—"अमुक जगह लड़कियों की पाठशाला में जगह खाली है । उस

में दिन बिताने की सहूलियत हो सकेगी। बैठे-बैठे दिल बहुत घबराता है।"

प्रति सोमवार को श्रीमती जी उसे पत्र लिखती थीं और उसका भी उत्तर आता। इस तरह पन्द्रह पत्र आये सोलहवें का उत्तर नहीं आया।

प्रायः तीन सप्ताह की देर से एक बड़ा सा लिफाफा—सम्राट के कार्य विधान पर (On His Majesty's Service) आया।

खोलने पर उसमें श्रीमती जी का लिखा चित्रा के नाम का पत्र हस्पताल को रीडाइरेक्ट किया हुआ निकला और एक पत्र सिविल सर्जन के हस्ताक्षर से उसके साथ था।

साहिब ने लिखा था—

'ति०.....को श्रीमती चित्रा रतन हस्पताल के स्त्री भाग में दाखिल हुई। उन्हें हृदय रोग की बहुत बड़ी शिकायत थी। अट्ठारह दिन बीमार रह कर उनका देहान्त हो गया। श्रीमती चित्रा रतन ने अपने किसी सम्बन्धी या मित्र का पता नहीं दिया था इसलिये सूचना दिये जाने का कोई उपाय न था। उनका शव म्युनिसिपैलिटी को सौंप दिया था। मृतात्मा के सम्बन्धियों के प्रति हमारी पूर्ण सहानुभूति है—सिविल सर्जन।'

उस रोज़ फिर हमें दर्पण की बात याद आयी और उसके साथ ही उस दर्पण के सामने एकान्त में चित्रा के सिंगार की भी बात याद आयी।

परलोक

मल्ली की मां ने कहा—"हां हां, बाबा ! ऐसा लड़का नहीं देखा ।"

मल्ली की मां का कहना ठीक है । वह इसी प्रतीक्षा में है कि किस दिन मट्टू को छठा बरस लगे और वह उसे स्कूल भेज कर चैन की सांस ले ।

मट्टू पांचवें बरस में है और मल्ली आठवें में परन्तु उसे हर बात में भाई से हार माननी पड़ती है, उसका अत्याचार सहना पड़ता है ।

मां का आंचल घेरे मट्टू किसी बात के लिये ज़िद्द कर रहा था और मल्ली छत पर खड़ी पतंगों का तमाशा देख रही थी । एक पतंग आकर गिरी । उल्लास से किलक कर मल्ली ने पुकारा—"अहा जी पतंग !"

आवाज़ सुनते ही मट्टू मां का आंचल छोड़ गोली की तरह ऊपर पहुंचा । 'मैं लूंगा, मैं लूंगा' कह कर वह बहिन से पतंग छीनने लगा । मल्ली पतंग को दोनों हाथों से सिर के ऊपर थाम कर सहायता के लिये चिल्लाने लगी—"मां मां, मट्टू पतंग छीन रहा है ।"

चीख-पुकार की कुछ भी परवाह न कर मट्टू मल्ली की धोती और चोटी खींच-खींच कर उसे हाथ नीचे करने के लिये विवश करने लगा । मल्ली का बावेला सुन मां ने पुचकार कर मट्टू को नीचे आने के लिये कहा, बहिन को तंग न करने का उपदेश दिया, फिर पीटने की धमकी दी ।

इस सब की कुछ भी परवाह न कर मट्टू पतंग लेने के लिये मल्ली के बाल नोचने लगा, उसके बदन में चिकोटियां भरने लगा ।

आखिर मल्ली रो पड़ी । मां ने पुचकार कर कहा—"मेरी रानी बेटी, तू दे दे, पतंग इस दुष्ट को दे दे ! तू मेरी रानी बेटी है, यह बड़ा चण्डाल है ! अच्छा आ जाने दे इसके पिता जी को, इसे ऐसा पिटवाऊंगी कि सारा बदन सूज जायेगा । शाबास, यह इसे दे दे । तू बड़ी रानी है । तुझे बाज़ार से नयी बड़ी सी पतंग मंगवा दूंगी ।"

मल्ली ने मां का कहना मान पतंग दे दी। मां ने कहा—"मल्ली बड़ी अच्छी है, इसे रबड़ की गुड़िया ले दूंगी।" लड़की रोती हुई मां के पास आ बैठी और मट्टू उछल-उछल कर पतंग फाड़ने लगा।

एक दिन नवम्बर के महीने में जगन ने बेमौसम के बहुत बढ़िया चार आम भेजे। मट्टू टोकरी देखते ही उसे पकड़ बैठा। मां ने हज़ार यत्न किया कि लड़के का ध्यान बंट जाय। वह आमों को छिपा दे और मल्ली के स्कूल से लौटने पर दोनों को एक साथ दे। सब छल-बल कर मां हार गयी। मट्टू ने टोकरी को तब छोड़ा जब दोनों हाथों में एक-एक आम ले लिया। शाम को मल्ली के स्कूल से लौटने पर बड़े यत्न से रखा हुआ एक आम मां ने निकाल उसे दिया और कहा—"जा, उधर जाकर खा। कहीं वह शैतान न आ जाय।"

परन्तु मट्टू से मल्ली को कौन बचा सकता है? न जाने कहां से झपटता हुआ वह आया और आम मल्ली के हाथ से छीन लिया।

मल्ली चिल्ला कर रोने लगी। मां ने रसोई में से बहुत डांटा, धमकी दी, रस्सी से बांध कर पीटने को कहा, फटकारा। जितनी देर में वह घटनास्थल पर पहुंची, मट्टू ने हाथ-मुंह और कपड़े सब खराब कर आम समाप्त कर दिया। मल्ली करुण स्वर में रोने लगी।

सुनकर मुझे भी बहुत दया आयी। हमने मल्ली को बहुत प्यार किया, पुचकारा और बहुत सी मिठाई और फल ला देने का वादा कर उसे बहला दिया।

अगले दिन मल्ली गुड़िया का गीत गा-गा कर अपनी नयी गुड़िया को रंगीन पोशाक पहना रही थी। मट्टू को गुड़िया पसन्द आ गयी। दोंनों हाथों से गुड़िया को छाती से लगा मल्ली ने गुड़िया देने से इन्कार कर दिया। मट्टू ने धमाधम मल्ली की पीठ पर घूंसे जमाने शुरू कर दिये।

रोना सुन मां झपटी हुई आयी। यह देख मट्टू फर्श पर लोट गुड़िया लेने के लिये ज़िद् करने लगा। समझाने-बुझाने का कुछ फल न हुआ, आखिर गुड़िया मट्टू को दिला दी गयी और मल्ली को नये-नये खिलौने मंगा देने का वायदा कर बहला दिया गया।

मल्ली सब अन्याय, अत्याचार सहती है; उसे मिलता है केवल वायदा,

आश्वासन। मट्टू वायदे या आश्वासन की कुछ चिन्ता नहीं करता, जो देखता है तुरन्त झपट लेता है। वह मौज करता है और मल्ली बड़ी-बड़ी कातर आंखों से ताक-ताक कर आशा करती रहती है।

मैं सोचता हूं इन दोनों में कौन सफल है ?

मल्ली की मां कह रही थी—"जी, इस शैतान को स्कूल में भरती करा दो।" हंस कर मैंने कहा, "अभी रहने दो, कमज़ोर हो जायेगा।" प्रत्युत्तर में उसने कहा, "ओफ, ऐसा शैतान लड़का!" और सुडौल लड़के को पेट से जन्म देने के अभिमान में उसका हृदय फूल उठा।

उसी समय नीचे पुकार सुन उसने कहा—"हां बाबा! एक तो इन फकीरों के मारे बैठना नहीं मिलता। ननकू कह दे, अभी जाये, हाथ ख़ाली नहीं है।"

ननकू ने मालकिन का सन्देश छत पर से ही फकीर को सुना दिया। उसके उत्तर में फकीर ने नीचे से कहा—"भाई, तेरे मालिक की खैर, दूध-पूत की खैर; यहां तांवे का पैसा दे, रब तुझे सोने का पैसा देगा।"

दूध-पूत की खैर की बात सुन मल्ली की मां की कठोरता पिघल रही थी। तांवे के पैसे के बदले सोने के पैसे की बात से वह बह चली। बोली—"भाई ननकू, अभी बैठी हूं, जा उसकी झोली में चुटकी डाल आ।"

देखता हूं, मेरी आठ बरस की भोली लड़की ही भविष्य की आशा-सांत्वना पर नहीं जीती, उसकी चतुर पक्की मां भी भविष्य की सांत्वना का भरोसा रखती है। फकीर को चुटकी देती है, ब्राह्मण भोजन कराती है। मल्ली की मां ही क्या; भारतवासी ही भविष्य की आशा पर जीते हैं।

परलोक में सुख भोग करेंगे, अगला जन्म सुखमय होगा, इसी आशा में हम इस जीवन की कदर्य अवस्था को सह जाते हैं। सांसारिक पदार्थों में आसक्त होने से परलोक प्राप्ति में बाधा होगी इसलिये हम उस ओर ध्यान नहीं देना चाहते। मन में स्वभावतः समृद्धि की इच्छा होती है परन्तु हम उसे समझते हैं, लिप्त होना अच्छा नहीं। मार पड़ती है तो कहते हैं—भगवान देखते हैं, समझेंगे।

देखता हूं यह सम्पूर्ण जाति ही मल्ली की भांति भविष्य की आशा पर जी रही है। दूसरे लोग (यूरोप) मट्टू की भांति आज के मतलब की बात सोचते हैं।

सोचता हूं—भविष्य के हज़ारों वायदों को पाकर भी जैसे मल्ली मट्टू की अपेक्षा कभी अधिक सफल न हो सकेगी, उसी तरह भगवान भी भारतवासियों

की भविष्य आशा का क्या करेंगे ?

यूरोप को देख कर उनका मन प्रसन्न ही होगा। जिस तरह हम मट्टू को देख कर कुछ नहीं कह सकते, उसी तरह भगवान यूरोप को कहेंगे—'शाबास बेटे।' और भारत को पुचकार कर कहेंगे—'घबराओ नहीं, तुम्हारे लिये परलोक है।'

लेकिन परलोक में भी—अगर परलोक है, यही भगवान होंगे और यूरोप होगा मट्टू और हम होंगे मल्ली।

दुख

जिसे मनुष्य सर्वाधिक अपना समझ भरोसा करता है, जब उसी से अपमान और तिरस्कार प्राप्त हो तो मन वितृष्णा से भर जाता है; एकदम मर जाने की इच्छा होने लगती है। इसे शब्दों में बता सकना सम्भव नहीं।

दिलीप ने हेमा को पूर्ण स्वतंत्रता दी थी। वह उसका कितना आदर करता था; कितनी आन्तरिकता से वह उसके प्रति अनुरक्त था? बहुत से लोग उसे 'अति' कहेंगे। इस पर भी जब वह हेमा को सन्तुष्ट न कर सका और हेमा केवल दिलीप के, उसकी सहेली के साथ दूसरे 'शो' में सिनेमा देख आने के कारण, रात भर रूठी रह कर सुबह उठते ही मां के घर चली गयी, तब दिलीप के मन में क्षोभ का अन्त न रहा।

सितम्बर का अन्तिम सप्ताह था। वर्षा की ऋतु बीत जाने पर भी दिन भर पानी बरसता रहा। दिलीप बैठक की खिड़की और दरवाज़ों पर पर्दे डाले बैठा था। वितृष्णा और ग्लानि में समय स्वयं यातना बन जाता है। एक-एक मिनिट गुजरना मुश्किल हो जाता है। समय को बीतता न देख दिलीप खीझ कर सो जाने का यत्न करने लगा। इसी समय जीने पर से छोटे भाई के धम-धम कर उतरते चले आने का शब्द सुनायी दिया। अलसाई हुई आंख को आधा खोल उसने दरवाज़े की ओर देखा।

छोटे भाई ने पर्दे को हटा कर पूछा—"भाई जी, आपको कहीं जाना न हो तो मैं मोटर-साइकिल ले जाऊं?"

इस विघ्न से शीघ्र छुटकारा पाने के लिये दिलीप ने हाथ के इशारे से उसे इजाज़त दे, आंखें बन्द कर लीं।

दीवार पर टंगे क्लाक ने कमरे को गुंजाते हुये छः बज जाने की सूचना दी। दिलीप को अनुभव हुआ—क्या वह यों ही कैद में पड़ा रहेगा? उठ कर

खिड़की का पर्दा हटा कर देखा, बारिश थम गयी थी। अब उसे दूसरा भय हुआ, कोई आ बैठेगा और अप्रिय चर्चा चला देगा।

वह उठा। भाई की साइकिल ले, गली के कीचड़ से बचता हुआ और उस से अधिक लोगों की निगाहों से छिपता हुआ वह मोरी दरवाज़े से बाहर निकल, शहर की पुरानी फसील के बाग से होता हुआ मिंटो पार्क जा पहुंचा। उस लम्बे-चौड़े मैदान में पानी से भरी घास पर पछवा के तेज़ झोंकों में ठिठुरने के लिये उस समय कौन आता ?

उस एकान्त में एक बेंच के सहारे साइकिल खड़ा कर वह बैठ गया। सिर से टोपी उतार बेंच पर रख दी। सिर में ठण्ड लगने से मस्तिष्क की व्याकुलता कुछ कम हुई।

खयाल आया, यदि ठण्ड लग जाने से वह बीमार हो जाये, उसकी हालत खराब हो जाये तो वह चुपचाप शहीद की तरह अपने दुःख को अकेला ही सहेगा। 'किसी' को अपने दुख का भाग लेने के लिये न बुलायेगा। जो उस पर विश्वास नहीं कर सकता, उसे क्या अधिकार कि उसके दुख का भाग बंटाने आये। एक दिन मृत्यु दबे पांव आयेगी और उसके रोग के कारण, हृदय की व्यथा और रोग को ले, उसके सिर पर सांत्वना का हाथ धर उसे शान्त कर चली जायेगी। उस दिन जो लोग रोने बैठेंगे, उनमें हेमा भी होगी। उस दिन उसे खोकर हेमा अपने नुकसान का अन्दाज़ा कर अपने व्यवहार के लिये पछतायेगी। यही बदला होगा दिलीप के चुपचाप सहते जाने का। निश्चय कर उसने सन्तोष का एक दीर्घ निश्वास लिया। वह करवट बदल ठण्डी हवा खाने के लिये बैठ गया।

समीप तीन फर्लांग पर मुख्य रेलवे लाइन से कितनी ही गाड़ियां गुजर चुकी थीं। उधर दिलीप का ध्यान न गया था। अब जब फ्रंटियर मेल तूफ़ान वेग से, तीव्र कोलाहल करती हुई गुजरी तो दिलीप ने उस ओर देखा। लगातार फ़र्स्ट और सैकण्ड के डिब्बों से निकलने वाले तीव्र प्रकाश से वह समझ गया—फ्रंटियर मेल जा रहा है, साढ़े नौ बज गये।

स्वयं सहे अन्याय के प्रतिकार की एक सम्भावना देख उसका मन कुछ हल्का हो गया था। वह लौटने के लिये उठा। शरीर में शैथिल्य की मात्रा बाकी रहने के कारण साइकिल पर न चढ़ वह पैदल-पैदल बागोबाग, बादशाही मसजिद से टकसाली दरवाज़े और टकसाली से भाटी दरवाज़े पहुंचा। मार्ग में शायद ही कोई व्यक्ति दिखायी दिया हो। सड़क किनारे स्तब्ध खड़े बिजली

के लैम्प निष्काम और निर्विकार भाव से अपना प्रकाश सड़क पर डाल रहे थे। मनुष्यों के अभाव की कुछ भी परवाह न कर, लाखों पतंगे गोले बांध-बांध कर, इन लैम्पों के चारों ओर नृत्य कर रहे थे। सौर जगत के यह अद्भुत नमूने थे। प्रत्येक पतंगा एक नक्षत्र की भांति अपने मार्ग पर चक्कर काट रहा था। कोई छोटा, कोई बड़ा दायरा बना रहा था। कोई दायें को, कोई बायें को, कोई विपरीत गति में निरन्तर चक्कर काटते चले जा रहे थे। कोई किसी से टकराता नहीं। वृक्षों के भीगे पत्ते बिजली के प्रकाश में चमचमा रहे थे।

एक लैम्प के नीचे से आगे बढ़ने पर उसकी छोटी परछाईं उसके आगे फैलती चलती। ज्यों-ज्यों वह लैम्प से आगे बढ़ता, परछाईं पलट कर पीछे हो जाती। बीच-बीच में वृक्षों की टहनियों की परछाईं उसके ऊपर से होकर निकल जाती। सड़क पर पड़ा प्रत्येक भीगा पत्ता लैम्पों की किरणों का उत्तर दे रहा था। दिलीप सोच रहा था—मनुष्य के बिना भी संसार कितना व्यस्त और रोचक है!

कुछ कदम आगे बढ़ने पर सड़क किनारे नींबू के वृक्षों की छाया में कोई श्वेत सी चीज़ दिखायी दी। कुछ और बढ़ने पर मालूम हुआ, कोई छोटा सा लड़का सफेद कुर्ता-पायजामा पहिरे, एक थाली सामने रखे कुछ बेच रहा है।

बचपन में गली-मुहल्ले के लड़कों के साथ उसने अक्सर खोमचे वाले से सौदा खरीद कर खाया था। अब वह इन बातों को भूल चुका था परन्तु इस सर्दी में सुनसान सड़क पर, जहां कोई आने-जाने वाला नहीं, यह खोमचा बेचने वाला कैसे बैठा है?

खोमचे वाले के क्षुद्र शरीर और आयु ने भी उसका ध्यान आकर्षित किया। उसने देखा, रात में सौदा बेचने निकलने वाले इस सौदागर के पास मिट्टी के तेल की ढिबरी तक नहीं। समीप आकर उसने देखा, वह लड़का सर्द हवा में सिकुड़ कर बैठा था। दिलीप के समीप आने पर उसने आशा की एक निगाह उसकी ओर डाली और फिर आंखें झुका लीं।

दिलीप ने और ध्यान से देखा, लड़के के मुख पर खोमचा बेचने वालों की सी चतुरता न थी, बल्कि उसकी जगह थी एक कातरता। उसकी थाली भी खोमचे का थाल न होकर घरेलू व्यवहार की एक मामूली हल्की मुरादाबादी थाली थी। तराजू भी न था। थाली में कागज़ के आठ टुकड़ों पर पकौड़ों की बराबर-बराबर ढेरियां लगा कर रख दी गयी थीं।

दिलीप ने सोचा, इस ठण्डी रात में हमीं दो व्यक्ति बाहर हैं। वह उसके

पास जाकर ठिठक गया। मनुष्य-मनुष्य में कितना भेद होता है परन्तु मनुष्यत्व एक चीज़ है जो कभी-कभी भेद की सब दीवारों को लांघ जाता है। दिलीप को समीप खड़े होते देख लड़के ने कहा—"एक-एक पैसे में एक-एक ढेरी।"

एक क्षण चुप रह दिलीप ने पूछा—"सब के कितने पैसे ?"

बच्चे ने उंगली से ढेरियों को गिन कर जवाब दिया—"आठ पैसे।"

दिलीप ने केवल बात बढ़ाने के लिये पूछा—"कुछ कम नहीं लेगा ?"

सौदा बिक जाने की आशा से जो प्रफुल्लता बालक के चेहरे पर आ गई थी, वह दिलीप के इस प्रश्न से उड़ गई। उस ने उत्तर दिया—"मां बिगड़ेगी।"

इस उत्तर से दिलीप द्रवित हो गया और बोला—"क्या पैसे मां को देगा ?" बच्चे ने हामी भरी।

दिलीप ने कहा—"अच्छा सब दे दो।"

लड़के की व्यस्तता देख दिलीप ने अपना रूमाल निकाल कर दे दिया और पकौड़े उस में बंधवा लिये।

आठ पैसे का खोमचा बेचने जो इस सर्दी में निकला है उस के घर की क्या अवस्था होगी, यह सोच कर दिलीप सिहर उठा। उस ने जेब से एक रुपया निकाल लड़के की थाली में डाल दिया। रुपये की खनखनाहट से वह सुनसान रात गूंज उठी। रुपये को देख लड़के ने कहा—"मेरे पास तो पैसे नहीं हैं।"

दिलीप ने पूछा—"तेरा घर कहां है ?"

"पास ही गली में है।" लड़के ने जवाब दिया।

दिलीप के मन में उस का घर देखने का कौतूहल जाग उठा। बोला—"चलो मुझे भी उधर से ही जाना है। रास्ते में तुम्हारे घर से पैसे ले लूंगा।"

बच्चे ने घबरा कर कहा—"पैसे तो घर पर भी न होंगे।"

दिलीप सुन कर सिहर उठा परन्तु उत्तर दिया—"होंगे, तुम चलो।"

लड़का खाली थाली को छाती से चिपटा आगे-आगे चला और उस के पीछे बाइसिकल को थामे दिलीप।

दिलीप ने पूछा—"तेरा बाप क्या करता है ?"

लड़के ने उत्तर दिया—"बाप मर गया है।"

दिलीप चुप हो गया। कुछ और दूर जा उस ने पूछा—"तुम्हारी मां क्या करती है ?"

लड़के ने उत्तर दिया—"मां एक बाबू के यहां चौका-बर्तन करती थी, अब बाबू ने हटा दिया है।"

दिलीप ने पूछा—"क्यों हटा दिया बाबू ने ?"

लड़के ने जवाब दिया—"मां अढ़ाई रुपया महीना लेती थी, जगतू की मां ने बाबू से कहा कि वह दो रुपये में सब काम कर देगी इसलिये बाबू की घर-वाली ने मां को हटा कर जगतू की मां को रख लिया है।"

दिलीप फिर चुप हो गया। लड़का नंगे पैर गली के कीचड़ में छप-छप करता चला जा रहा था। दिलीप को कीचड़ से बच कर चलने में असुविधा हो रही थी। लड़के की चाल की गति को कम करने के लिये दिलीप ने फिर प्रश्न किया—"तुम्हें जाड़ा नहीं मालूम होता ?"

लड़के ने शरीर को गरम करने के लिये चाल को और तेज करते हुये उत्तर दिया—'नहीं।"

दिलीप ने फिर प्रश्न किया—"जगतू की मां क्या करती थी ?"

लड़के ने कहा—"जगतू की मां स्कूल में लड़कियों को घर से बुला लाती थी। स्कूल वालों ने लड़कियों को घर से लाने के लिये मोटर रख ली है और उसे निकाल दिया है।"

गली के मुहाने पर कमेटी का बिजली का लैम्प जल रहा था। ऊपर की मंजिल की खिड़कियों से भी गली में कुछ प्रकाश पड़ रहा था। उस से गली का कीचड़ चमक कर किसी कदर मार्ग दिखाई दे रहा था।

संकरी गली में एक बड़ी खिड़की के आकार का दरवाजा खुला था। उस का धुंधला लाल-सा प्रकाश सामने पुरानी ईंटों की दीवार पर पड़ रहा था। इसी दरवाजे में लड़का चला गया।

दिलीप ने झांक कर देखा। मुश्किल से आदमी के कद की ऊंचाई की कोठरी में—जैसी प्रायः शहरों में ईंधन रखने के लिये बनी रहती है—धुआं उगलती मिट्टी के तेल की एक ढिबरी अपना धुंधला लाल प्रकाश फैला रही थी। एक छोटी चारपाई, जैसी कि श्राद्ध में महाब्राह्मणों को दान दी जाती है, काली दीवार के सहारे खड़ी थी। उस के पाये से दो एक मैले कपड़े लटक रहे थे। एक क्षीणकाय, आधी उमर की स्त्री मैली-सी धोती में शरीर लपेटे बैठी थी।

बेटे को देख स्त्री ने पूछा—"सौदा बिक गया बेटा ?"

लड़के ने उत्तर दिया—"हां मां," और रुपया मां के हाथ में देकर कहा, "बाकी पैसे बाबू को देने हैं।"

रुपया हाथ में ले मां ने विस्मय से पूछा—"कौन बाबू बेटा ?"

बच्चे ने उत्साह से कहा—"सईकिल वाले बाबू ने सब सौदा लिया है।

उसके पास छुट्टे पैसे नहीं थे। बाबू गली में खड़ा है।"

घबरा कर मां बोली—"रुपये के पैसे कहां मिलेंगे बच्चा ?" सिर के कपड़े को संभाल दिलीप को सुनाने के अभिप्राय से मां ने कहा—"बेटा, रुपया बाबू जी को लौटा कर घर का पता पूछ ले पैसे कल ले आना।"

लड़का रुपया ले दिलीप को लौटाने आया। दिलीप ने ऊंचे स्वर से ताकि मां सुन ले, कहा—"रहने दो रुपया, कोई परवाह नहीं, फिर आ जायेगा।"

सिर के कपड़े को आगे खींच स्त्री ने कहा—"नहीं जी, आप रुपया लेते जाइये, बच्चा पैसे कल ले आयेगा।"

दिलीप ने शरमाते हुये कहा—"रहने दीजिये, यह पैसे मेरी तरफ से बच्चे को मिठाई खाने के लिये रहने दीजिये।"

स्त्री नहीं-नहीं करती रह गयी। दिलीप अंधेरे में पीछे हट गया।

स्त्री के मुर्झाये, कुम्हलाये पीले चेहरे पर कृतज्ञता और प्रसन्नता की झलक छा गयी। रुपया अपनी चादर की खूंट में बांध, एक ईंट पर रखे पीतल के लोटे से बांह के इशारे से पानी ले उसने हाथ धो लिया और पीतल के एक बर्तन के नीचे से मैले अंगोछे में लिपटी दो रोटियां निकाल, बेटे का हाथ धुला उसे खाने को दे दीं।

बेटा तुरन्त की कमाई से पुलकित हो रहा था। मुंह बना कहा—"ऊं-ऊं रूखी रोटी !"

मां ने पुचकार कर कहा—"नमक डाला हुआ है बेटा।"

बच्चे ने रोटी ज़मीन पर डाल दी और ऐंठ गया—"सुबह भी रूखी रोटी ···हां रोज़-रोज़ रूखी !"

हाथ आंखों पर रख बच्चा मुंह फैला कर रोना ही चाहता था, मां ने उसे गोद में खींच लिया और कहा—"मेरा राजा बेटा, सुबह ज़रूर दाल खिलाऊंगी। देख, बाबू तेरे लिये रुपया दे गये हैं। शाबाश !"

"सुबह मैं तुझे खूब सौदा बना दूंगी, फिर तू रोज़ दाल खाना।"

बेटा रीझ गया। उसने पूछा—"मां तू ने रोटी खा ली ?"

खाली अंगोछे को तहाते हुये मां ने उत्तर दिया—"हाँ, बेटा ! अब मुझे भूख नहीं है, तू खा ले।"

भूखी मां का बेटा बचपन के कारण रूठा था परन्तु माँ की बात के बावजूद घर की हालत से परिचित था। उसने अनिच्छा से एक रोटी माँ की ओर बढ़ा कर कहा—"एक रोटी तू खा ले।"

माँ ने स्नेह से पुचकार कर कहा—"ना बेटा, मैंने सुबह देर से खायी थी, मुझे अभी भूख नहीं, तू खा।"

दिलीप के लिये और देख सकना सम्भव न था। दाँतों से होंठ दबा वह पीछे हट गया।

मकान पर आकर वह बैठा ही था कि नौकर ने आ दो भद्रपुरुषों के नाम बता कर कहा, आये थे बैठ कर चले गये। खाना तैयार होने की सूचना दी। दिलीप ने उसकी ओर बिना देखे ही कहा—"भूख नहीं है।" उसी समय उसे लड़के की माँ का 'भूख नहीं' कहना याद आ गया।

नौकर ने विनीत स्वर में पूछा—"थोड़ा दूध ले आऊं?"

दिलीप को गुस्सा आ गया। उसने विद्रूप से कहा—"क्यों, भूख न हो तो दूध पिया जाता है? दूध ऐसी फालतू चीज़ है?"

नौकर कुछ न समझ विस्मित खड़ा रहा।

दिलीप ने खीझ कर कहा—"जाओ जी।"

मिट्टी के तेल की ढिबरी के प्रकाश में देखा वह दृश्य उसकी आँखों के सामने से हटना न चाहता था।

छोटे भाई ने आकर कहा—"भाभी ने यह पत्र भेजा है।" और लिफाफा दिलीप की ओर बढ़ा दिया।

दिलीप ने पत्र खोला। पत्र की पहिली लाइन में लिखा था—

"मैं इस जीवन में दुख ही देखने को पैदा हुई हूं···।"

दिलीप ने आगे न पढ़, पत्र फाड़ कर फेंक दिया। उसके माथे पर बल पड़ गये। उसके मुंह से निकला—

"काश, तुम जानतीं दुख किसे कहते हैं!·· तुम्हारा यह रसीला दुख तुम्हें न मिले तो ज़िन्दगी दूभर हो जाये।"

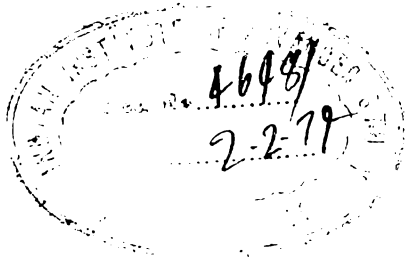
4698
2-2-79